विषय-सूचि

* ओ३म् *

समर्पणम्

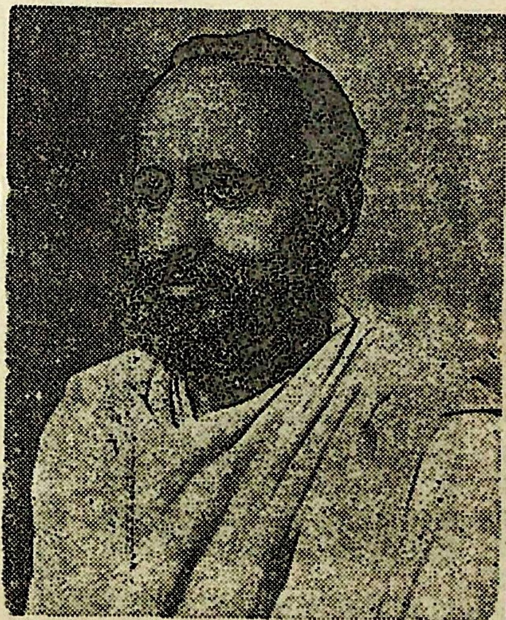
जिन्होंने मेरे जीवन की धारा को बदल कर इस
आत्मोद्धारक पद्धति के प्रति मेरे हृदय में
नैसर्गिक प्रेम पैदा किया
और
जिनकी कृपा से मैं इसके लिखने में
समर्थ हुआ
उन्हीं पूज्य गुरुदेव, श्रीमद् दयानन्द आर्षविद्यापीठ के कुलपति, उच्चकोटि के समाजसुधारक, इतिहासविशेषज्ञ, बालब्रह्मचारी, महातपस्वी, त्यागमूर्ति, तेजःपुञ्ज, आर्ष-पाठविधि के प्रबल समर्थक तथा अपने तपःपूत जीवन-जल से गुरुकुल—वाटिका के परिषेक्ता
श्रद्धेय

श्री स्वामी ओमानन्द जी महाराज

के
पवित्र कर-कमलों में यह संकलन
सादर सविनय समर्पित
करता हूं।

—सत्यव्रत अग्निवेश

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

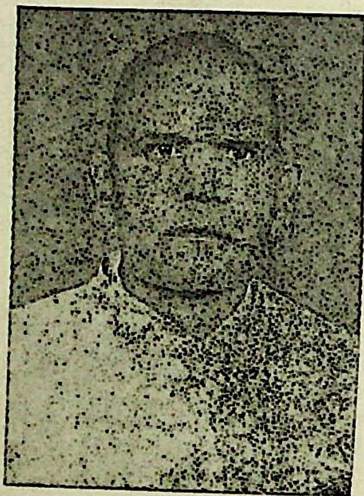


ब्रह्मचर्य की साक्षान्मूर्ति, त्यागी, तपस्वी, आदर्श देशभक्त,
युवकों के प्रेरणास्रोत, धुन के धनी, ओजस्वी वक्ता,
राष्ट्र की अप्रतिमविभूति, वीरशिरोमणि

श्री स्वामी ओमानन्द जी महाराज

(श्री आचार्य भगवान्देव जी महाराज)

भूमिका लेखक



श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज

आप उच्चकोटि के विद्वान्, सफल लेखक, साधुमना, निर्लेप संन्यासी हैं। आपने नवयौवन से उफनती हुई अपनी जीवनधारा को विषय-सागर से विमुख करके जनमानस के उद्धार की भावना से गृह-त्याग किया और ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास दीक्षा ग्रहण कर शिक्षा तथा साहित्यक्षेत्र में महती सेवा कर रहे हैं। आप जैसे कर्मठ तथा वीतराग परिव्राजकों पर आर्यसमाज को गर्व है।

भूमिका

आपके सम्मुख एक पुस्तक प्रस्तुत की जा रही है। जिसका नाम है "सुखी जीवन"। इस नामकरण से लेखक के आन्तरिक भाव साकार हो उठे हैं, ऐसा प्रतीत होता है। लेखक चाहता है कि जो प्राणी उत्पन्न हुआ है, वह दुःखी न रहे, सुखी जीवन बिताये। ऐसी पुस्तकों के लिखने का आधार भी तब ही बन पाता है जब यह अनुभूति हो कि लोगों की मांग क्या है। इसमें दो मत नहीं हैं कि प्रत्येक मानव—चाहे वह बच्चा हो, युवा हो, नर हो वा नारी हो, कोई भी अपने जीवन के क्षण दुःखमय देखना नहीं चाहता। सबकी इच्छा है कि मैं सुखी रहूं।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि सभी लोगों को सुखी रहने के उपाय ज्ञात नहीं हैं, जो जानकार हैं और उसके अनुसार चल रहे हैं, वे समाज में पूज्य हैं, श्रेष्ठ हैं। किन्तु जो महानुभाव इस कला को नहीं पकड़ पाये हैं और सुख के लिए छटपटा रहे हैं, उनके मार्गदर्शन में यह पुस्तक अत्यन्त सहायक सिद्ध होगी, यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है।

इतना यहां कह देना उचित ही होगा कि किसी बात को जानने के पश्चात् जब तक उसके अनुसार कार्य न किया जावे, तब तक वह जानकारी भी व्यर्थ ही है; अतः मनुष्य के उच्च व्यक्तित्व की कसौटी भी उसका आचरण ही माना गया है।

लेखक ने इस पुस्तक में अपना विषय मानव-शरीर से आरम्भ किया है। शास्त्रीय दृष्टि से शरीर को सुख और दुःख दोनों का साधन माना गया है। क्योंकि दुःख की प्रतीति जैसे इस देह से

होती है, वैसे ही सुख की उपलब्धि में भी यह ही कारण है। दुःख का अभाव ही तो प्रायः सुख समझा जाता है। इसलिए सुख की प्राप्ति में शरीर मुख्य साधन है।

इस शरीर की भित्ति आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य पर खड़ी है। इसलिए लेखक ने इन तीनों का विवेचन भली प्रकार किया है और बताया है कि शरीर को स्थिर रखने में ये तीनों ही प्रधान हैं, इनमें से किसी एक का भी अभाव इस पाञ्चभौतिक देह को सर्वथा समाप्त कर देगा।

युवकों व विद्यार्थियों को लेखक ने कुछ प्रेरणायें इसके पश्चात् दी हैं। चढ़ती जवानी, जो सभलने की होती है, अनभिज्ञता अथवा दृढ़ता के अभाव में वही कदाचार में फंसाकर ऐसे दुःख के गड्ढे में जा पटकती है, जहां से वह युवक निकलना चाहता हुआ भी संस्कार दूषित हो जाने के कारण निकल नहीं पाता। फिर भी मानव में भगवान् ने वह आत्मबल दिया है, जो शारीरिक वल को पछाड़ देता है। इसलिए ऐसे निराश व्यक्ति यदि अपने में मानसिक बल संजोकर आचार के क्षेत्र में जिस क्षण से भी कूदेंगे, तव से उनके जीवन की काया पलटनी प्रारम्भ हो जावेगी। अतः ऐसी पुस्तकें सभी के लिए उपादेय ठहरती हैं।

पुस्तक के अन्त में प्राणायाम-व्यायाम और आसन के वे प्रकार भी लेखक ने वताना उचित समझा है, जिन से आहार, निद्रा, और ब्रह्मचर्य की साधना में साधक को वल मिले। इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पुस्तक अपने रूप में पूरी है।

यह तो मेरे लिखने का तात्पर्य नहीं है कि सुखी जीवन बनाने के लिए अन्य कोई उपाय है ही नहीं। हैं, पर वे सब ऐसे हैं जो

इन्हीं में समा जाते हैं। इनकी यदि विस्तृत व्याख्या की जावे, तो वे सब इन्हीं नियमों-उपायों के अन्तर्भूत हो जावेंगे। हाथी के पैर में सब के पैर समा जाया करते हैं, पाठक यह लोकोक्ति यहां सर्वथा चरितार्थ होती देखेंगे।

लेखक की यह दूसरी रचना है। प्रथम कृति का नाम 'एक सत्पुरुष की दिनचर्या' (दैनन्दिनी) है। हरयाणा राज्य के भाषा विभाग ने उसका मूल्यांकन किया है और उसे छात्रों के उपयुक्त समझकर स्कूलों के पुस्तकालयार्थ स्वीकार किया है।

इसी प्रकार "सुखी जीवन" को भी हरयाणा राज्य के भाषा विभाग ने १९७१-७२ वर्ष में बाल साहित्य के अन्तर्गत पुरस्कृत किया है।

यदि जनता ने इस पुस्तक को लेखक की भावना के अनुसार हृदयङ्गम किया, तो वे समाज को और भी कल्याण की भावनायें देने में समर्थ हो सकेंगे।

—वेदानन्द वेदवागीश

प्राक्कथन

किसी भी देश की आन्तरिक दशा का ज्ञान वहां की भावी पीढ़ी को देख कर किया जाता है। क्योंकि बालकों ने ही बड़े हो कर देश का निर्माण करना है वे जैसे उन्नत व अवनत होंगे उनका राष्ट्र भी वैसा ही होगा।

जिस देश के बालक मेधावी और ब्रह्मचारी होंगे वही देश अपना आधिपत्य स्थापित कर सकता है। किन्तु जिस देश में निर्बुद्धि और निर्वीर्य बालक होंगे उस देश को कदम कदम पर अपमान सहना होगा, दूसरों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी। अतः बालकों को सुयोग्य बनाना देश का प्रथम आवश्यक कर्तव्य है, क्योंकि बचपन ही बालकों के बनने और बिगड़ने की अवस्था होती है। यही अवस्था मानव-जीवन रूपी महल की नींव होती है। नींव के मजबूत बनने से ही मकान मजबूत बनता है। इसी आयु में जीवन भर के लिए अच्छे बुरे संस्कार पड़ते हैं, यही वह उत्तम अवसर है जिसमें वीर्य रक्षा द्वारा मस्तिष्क और शरीर को पुष्ट करके जीवन का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। अथवा वीर्य क्षय द्वारा शरीर को रोगी और दिमाग को खोखला करके अपने जीवन को दुःखी बनाया जा सकता है।

आज हमारे देश में हमारा अपना स्वतन्त्र शासन है। हमारे राष्ट्र का नव निर्माण हो रहा है और राष्ट्र के नवनिर्माण का आधार आज के हमारे बालक ही हैं। अतः यह आवश्यक कर्त्तव्य हो जाता है कि हम अपने इन सुकोमलहृदय बालकों को कुचेष्टाओं से बचने और ब्रह्मचर्य की उत्तम उत्तम शिक्षा दें।

बालकों के निर्माता जहां माता-पिता और गुरु होते हैं वहां पवित्र पुस्तकें भी मुख्य साधन होती हैं किन्तु आजकी गन्दी पुस्तकें बच्चों को बनाने की अपेक्षा बिगाड़ने का कार्य करती हैं। इसी कमी को यथा सामर्थ्य पूरा करने की इच्छा से मैंने इस पुस्तक को लिखने का प्रयास किया है। मैं इस में कहां तक सफल हुआ हूँ इस का निर्णय तो पाठक स्वयं ही करेंगे।

वैसे तो यह पुस्तक आबाल-वृद्ध वनिता सभी के लिए उपयोगी है परन्तु नई पीढ़ी के लिये परमोपयोगी है क्योंकि बड़े बूढ़ों का जो बनना या विगड़ना था सो वह हो चुका। बालकों ने अभी अपनी जीवन-यात्रा आरम्भ करनी है, उनके सामने जो कठिनाइयां और गिरने के स्थल आयेंगे उनसे उन्हें अवगत कराकर वचाना ही इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है।

इस पुस्तक को पढ़कर यदि एक भी बालक, युवक वा अन्य किसी ने अपने जीवन को सुखी बनाया तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

अन्त में मैं भाई विरजानन्द जी के प्रति आभार प्रकट करना भी आवश्यक समझता हूँ, जिन्होंने पुस्तक लिखने एवं आसनों के चित्र आदि बनाने में मनोयोग से पूर्ण सहयोग दिया।

गुरुकुल झज्जर
शिवरात्रि
सं० २०२७ वि०

शुभेच्छु
सत्यव्रत "अग्निवेश"

दूसरा संस्करण

"सुखी जीवन" का प्रथम संस्करण समाप्त तो बहुत पहले ही हो चुका था और दूसरा संस्करण निकालने के लिये पूज्य आचार्य जी (श्री स्वामी ओमानन्द जी) बार-बार मुझे कहते रहे, किन्तु किन्हीं कारणों से इसके निकालने में इतनी देर हो गई। अब भगवान् की दया से यह दूसरा संस्करण भी आपके सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है।

सुखी जीवन के परिवर्धित द्वितीय संस्करण को प्रकाशित कर पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है। पिछले संस्करण में इसकी दो हजार प्रतियां कुछ ही दिनों में समाप्त हो गई और बार-बार स्थान-स्थान से निरन्तर मांग आ रही है, इसी से पाठकगण इकका मूल्याङ्कन कर सकते हैं। प्रस्तुत संस्करण में पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से अनेक सुधार किये हैं। इस संस्करण में ब्रह्मचर्य के विषय में वालक के माता, पिता, गुरु तथा राष्ट्र के नेताओं से विशेष निवेदनात्मक प्रकरण एवं ब्रह्मचर्य के साधनों में भी कुछ अत्यावश्यक साधनों को बढ़ाया है। साथ ही योगासनों का भी विस्तृत वर्णन है। इस प्रकार यह संस्करण विगत संस्करण की अपेक्षा बहुत उपयोगी बन गया है।

मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि इस पुस्तक को पहले आप पढ़ें और फिर यदि आपके मित्र आपकी सन्तान सुबोध है तो उनके हाथों में भी यह जीवन पथ प्रदीप ग्रन्थ रख दें और बार-बार पढ़ने की प्रेरणा करें। इसके पढ़ने से आपके मित्र एवं आपकी सन्तान सदाचारी, ब्रह्मचारी, देशभक्त एवं सेवाभावी बनेगी।

शुभेच्छु

सत्यव्रत अग्निवेश

❀ ओ३म् ❀

शरीर-सम्पत्ति

परम पिता परमात्मा की इस विचित्र सृष्टि में मानव शरीर एक अद्भुत कृति है। यह मानव शरीर तीन पदार्थों से बना है आत्मा, मन और जड़ देह से। महर्षि चरक ने कहा है—

सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

अर्थात् मन, आत्मा तथा शरीर रूपी तीन खम्भों पर यह लोक अवस्थित है। ये तीनों ही आधारस्तम्भ हैं, इन्हीं तीनों के संयोग से इस लोक की स्थिति है। इनमें से आत्मा तो द्रष्टा है और रोगादि से दूर है। केवल शरीर और मन ही व्याधि आधिओं के अधिष्ठान हैं। इसीलिये शारीरिक और मानसिक ये दो प्रकार के रोग संसार में देखने में आते हैं।

मानवशरीर प्रकृति की उत्कृष्ट कला का नमूना है। किन्तु यह शरीर कितने परिश्रम के बाद मिलता है, इस बात को बहुत कम व्यक्ति जानते हैं। किसी कवि ने कहा है—

पूर्व जन्म के सुकृत् सहस्रों, होते हैं जब एके तीर।
पाता है तब मनुज मनोहर, मानव का यह रुचिरशरीर ॥

यह मनुष्य तन पाना इतना सरल नहीं है जितना कि आजकल समझा जाता है। इस शरीर रूपी अमूल्य हीरे को प्राप्त करने के लिये जीव को अनेक जन्म-जन्मान्तरों तक सुकृत् कर्म करने पड़ते हैं, तब कहीं यह दुर्लभ मनुज शरीर प्राप्त होता है। इसलिये प्रत्येक जीव का यह परम कर्त्तव्य है कि वह इस अमूल्य रत्न को यूं

ही न खोकर इस उत्तम रथ रूपी शरीर द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करे। यदि इसका सदुपयोग नहीं किया और व्यर्थ ही काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि विकारों में फंसकर इस त्रिपुर विमान को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, तो अन्त में पछताना पड़ेगा।

इसी मानव देह के महत्त्व को प्रकट करने के लिये शास्त्रकारों ने इसे अनेक प्रकार से उपमित किया है—

आयतनं सर्वविद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
प्रेयः किमन्यत् शरीरमजरामरं विहायैकम् ॥

अर्थात् यह मानव शरीर सब सद्‌विद्याओं का आधार है और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का मूल कारण है। यदि यह अजर और अमर बन जाये, तो इससे बढ़कर प्रिय क्या हो सकता है।

वेद ने भी इसे "देवानां पूः" देवताओं का नगर कह कर पुकारा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में आत्मा को रथी और शरीर को रथ नाम से स्मरण किया है—

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।"

और कोई इस शरीर को संसार सागर से पार उतरने की नौका के नाम से पुकारता है।

वास्तव में यह मानव शरीर आत्मा का निवास स्थान और परमपिता परमात्मा का पावन मन्दिर है। इसी मन्दिर में रहते हुये ही जीव उसे प्राप्त कर सकता है। इसलिये हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि इस अमूल्य रत्न शरीर को पाकर हम अपने शरीर को स्वस्थ एवं बलवान् बनायें। यदि ऐसे उत्तम रथ को पाकर भी हम दुःखी और निराश बने रहे और अपने जीवन को उत्तम जीवन नहीं बना सके तथा साथ ही मोक्ष के लिये अग्रसर नहीं हो

पाये तो हमारा मानवशरीर को धारण करना व्यर्थ हो जायेगा और फिर बार-बार जन्म-मरण के चक्र में घूमना पड़ेगा।

कुछ लोग इस शरीर को मल, मूत्र, पीप और खून की थैली बतलाते हैं तथा कोई-कोई इसे हाड़-मांस का पञ्जर कहकर इसका निरादर करते हैं। कुछेक लोग "शरीरं व्याधिमन्दिरम्" की रट लगाते हैं, तो किन्हीं का कहना है कि यह शरीर तो पानी के क्षण भंगुर बुदबुदे के समान नाशवान् है किन्तु याद रखो ! ऐसा विचारने वाले दूसरों का तो क्या, अपना भी कुछ कल्याण नहीं कर सकते। ऐसे बुद्धि के शत्रु, आलसी और प्रमादी बन, इस शरीर को तुच्छ तथा हीन समझकर जीवन के अमूल्य क्षणों को संसार के विषय विकारों, दुर्व्यसनों तथा आमोद प्रमोद में ही खो दिया करते हैं।

अतः हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम इस शरीर सम्पत्ति के महत्त्व को समझकर इस ओर विशेष ध्यान दें। इसे स्वस्थ एवं बलवान् बनायें। यदि हमने इस शरीर को नीरोग एवं सशक्त बना लिया तो हमारा सारा जीवन सुखपूर्वक बीतेगा, क्योंकि स्वस्थ शरीर ही सुखी जीवन की सबसे पहली सीढी है। जिसका शरीर स्वस्थ नहीं है वह सुखपूर्वक अपनी जीवन यात्रा को पूर्ण नहीं कर सकता। सुखी जीवन बनाने का मुख्य साधन स्वस्थ एवं बलवान् शरीर ही है। जिसका शरीर स्वस्थ नहीं है, उसका जीवन सुखी जीवन नहीं कहला सकता। रोगी मनुष्य न तो यह लोक ही सुधार सकता है और न ही परलोक। अतः सुखी जीवन बनाने के लिये शरीर को सर्वप्रथम स्वस्थ एवं बलवान् बनाना परम आवश्यक है। इसी बात की पुष्टि करते हुये महर्षि चरक अपने (चरक) शास्त्र में लिखते हैं—

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम् ॥

सब बातों को छोड़कर सर्वप्रथम शरीर सम्पत्ति का पालन करना चाहिये, क्योंकि स्वस्थ शरीर के अभाव में अन्य सब धन-सम्पत्ति आदि सुख साधनों का भी अभाव हो जाता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥
प्रादुर्भूतो मनुष्याणामन्तरायो महानयम् ।
(चरक सूत्रस्थान)

मनुष्य के जीवन को सफल बनाने वाला "पुरुषार्थचतुष्टय" अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का आधार वा मूल साधन आरोग्य है। रोग इस स्वस्थशरीर और श्रेय (कल्याण) को भी नष्ट करने वाला है। यह रोग मनुष्यों के लिये बड़ा भारी विघ्न उत्पन्न कर देता है।

उपनिषदों में भी "नायमात्मा वलहीनेन लभ्यः" परमात्मा शक्तिरहित मनुष्यों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, यह कह निर्बल शरीर की भर्त्सना करते हुये आरोग्य की महत्ता दिखाई है।

इसलिये न केवल धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के लिये ही स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है, अपितु मोक्ष पाने के लिये भी नीरोगता की परम आवश्यकता है।

मानसिक रोगों का प्रभाव शरीर पर और शारीरिक रोगों का प्रभाव मन पर पड़ता है। अतः पूर्ण स्वस्थता के लिए मन और शरीर दोनों का ही स्वस्थ होना आवश्यक है। इसीलिये स्वस्थ

पुरुष की परिभाषा करते हुये आयुर्वेदज्ञ ऋषियों ने इन्द्रियों सहित मन का भी ग्रहण किया है।

स्वस्थ की परिभाषा

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

—सुश्रुत

जिस मनुष्य के वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष सम अवस्था में हों, जिसकी जठराग्नि न अधिक तेज, न अधिक मन्द हो, जिसकी रस रक्तादि सप्त धातुयें समुचित मात्रा में बनती हों तथा शरीर में स्थिर रहती हों, जिसकी मल-मूत्रादि की क्रिया ठीक होती हो और जिसकी दशों इन्द्रियां कार्य करने में सक्षम हों तथा मन और आत्मा प्रसन्न हों, वही व्यक्ति स्वस्थ होता है।

महर्षि पतञ्जलि ने भी स्वस्थ शरीर के लिए वहुत ही सुन्दर कसौटी दी है। यथा—

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत्।

—योगदर्शन ३।४६॥

अर्थात् रूप=मुखाकृति का सुन्दर और दर्शनीय होना। लावण्य=सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गों में कान्ति होना। बल=शरीर में शक्ति का होना। वज्रसंहननत्वं=शरीर के प्रत्येक अङ्ग-उपाङ्ग का वज्र के समान सुदृढ़ एवं परिपुष्ट हो जाना।

इनका समूह काय (शरीर) सम्पत्ति कहलाती है। स्वस्थ शरीर की इस प्रकार की सर्वग्राही व्याख्या करके सचमुच महर्षि पतञ्जलि ने मानवशरीर का भव्य आदर्श संसार के सामने उपस्थित किया है।

प्रत्येक मनुष्य रूप=बाह्य सौन्दर्य चाहता है। अपने को रूपवान् बनाने के लिये कितना ही प्रयत्न किया जाता है। किन्तु रूप के साथ यदि लावण्य न हो तो? तब कान्ति से रहित शरीर कैसा लगेगा? लावण्य होता है आन्तरिक सौन्दर्य। यदि रूप और लावण्य के साथ शरीर में बल न हो तो, तब भी स्वास्थ्य अधूरा है। एक बलवान् व्यक्ति हजारों रूपवान् मनुष्यों को कम्पायमान कर सकता है। इसीलिये बल की भी महती आवश्यकता है। बल की आवश्यकता दिखलाते हुये छान्दोग्योपनिषत्कार ने भी कहा है—

"बलमुपास्स्व"

उक्त तीनों रूप, लावण्य और बल के साथ-साथ शरीर के सब अंग प्रत्यङ्ग वज्र के समान कठोर एवं सुदृढ़ हों, तभी महर्षि पतञ्जलि के मत में शरीर सम्पत्ति पूरी होती है।

इस परिभाषा के अनुसार पूर्ण रूप से स्वस्थ कहलाने के अधिकारी आज इने-गिने ही मिलेंगे। अब प्रश्न पैदा होता है कि क्या फिर सब पूर्ण स्वस्थ और पूर्ण सुखी नहीं हो सकते? क्या सब मनुष्य ऐसा आदर्श स्वास्थ्य प्राप्त नहीं कर सकते?

उत्तर स्पष्ट है यदि आप सुखी जीवन बनाना चाहते हैं तो आज से ही आपको दृढ़प्रतिज्ञ होकर अपने स्वास्थ्य की तरफ विशेष ध्यान देना होगा। भगवान् ने हमें यह शरीर रोगी रखने के लिये नहीं दिया है। परमपिता के राज्य में तो प्रायः प्रत्येक प्राणी नीरोग, स्वस्थ, सुन्दर तथा सब प्रकार से सर्वाङ्गपूर्ण उत्पन्न होता है, परन्तु हम लोग स्वयं ही अपने कुकृत्यों द्वारा अपने अनुपम सौन्दर्य को, स्वस्थ और सुडौल मनोहर शरीर को बिगाड़ डालते हैं। यही नहीं, किन्तु अमूल्य मानव जीवन को भी अकाल ही में चिता पर चढ़ा देते

हैं। हम तो रोगों और दुःखों को स्वयं मोल लेते हैं और फिर पछताते हैं जब अवसर हाथ से निकल चुका होता है। संसार में दूसरी ऐसी कोई शक्ति नहीं जो हमारी इच्छा के विपरीत दुःखी या सुखी बना सके। केवल हम स्वयं ही अपने हाथों से अपना सर्वनाश या निर्माण कर सकते हैं।

स्वस्थ रहना प्रत्येक प्राणी का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी लिए हमारे पूर्वजों ने स्वास्थ्य लाभ के लिये अत्यन्त सूक्ष्म विचार करके मानव के लिये बहुमूल्य नियम निर्धारित किये हैं। आयुर्वेद के ग्रन्थ चरकशास्त्र में हमारे शरीर रूपी अनुपम भवन के तीन आधार स्तम्भों का वर्णन मिलता है—

त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति ।।

अर्थात् वे तीनों आधारस्तम्भ ये हैं—

१. आहार। २. निद्रा। ३. ब्रह्मचर्य।

इन्हीं तीन खम्भों पर हमारा शरीर ठहरा हुआ है। इन तीन खम्भों का परस्पर ऐसा सम्बन्ध है कि एक के खराब हो जाने से दूसरा भी खराब होने लगता है और फिर शरीर रूपी यह सुन्दर महल बिना ढहे नहीं रहता। इसीलिये अब हम मानव के शरीर को उठाये रखने वाले उपर्युक्त तीनों स्तम्भों (खम्भों) पर क्रमशः विचार करेंगे। सबसे पहला है—

आहार

आहार की परिभाषा—

"आहरन्ति तस्माद्रसमित्याहारः"

अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (काशिका ३।३।१६)

अर्थात् जिससे रस ग्रहण किया जाता है उसे आहार कहते हैं।

सृष्टि में सब प्राणियों के शरीर की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का प्रधान कारण आहार (भोजन) है। चरक में भी कहा है—

प्राणिनां प्राणमाहारः

अर्थात् प्राणियों का प्राण आहार है। इतना ही नहीं, अपितु प्राणियों के शरीर की वृद्धि, बल, वर्ण, इन्द्रियों की प्रसन्नता, ओज तथा उत्तम स्वास्थ्य का कारण भी भली-भाँति प्रयुक्त आहार ही प्रमाणित हुआ है। कीड़ी से लेकर हाथी तक सभी प्राणियों को भोजन की आवश्यकता होती है। शूरवीर की शूरता, विचारशील की विचारशीलता और कर्मवीर की कार्यक्षमता भोजन के अभाव में लुप्त हो जाती है। आज प्रायः प्रत्येक मनुष्य की सम्पूर्ण शक्ति भोजन जुटाने में ही लगी हुई है। यह जो संसार में चहल-पहल दिखाई दे रही है, चारों ओर जो अशान्ति और उपद्रव दृष्टिगोचर हो रहे हैं, ये सब केवल भोजन पाने के लिये। भोजन के लिये किसान तथा मजदूर कड़कती धूप और शरीर को कंपाने वाले भयङ्कर जाड़े में भी काम करता है। इसी भोजन के लिये व्यापारी, नौकर और नेता मारे-मारे फिर रहे हैं। सारांश यह कि सभी आहार प्राप्ति के लिये व्यस्त हैं, अशान्त हैं, दुःखी हैं, परेशान हैं और आकुल हैं।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मनुष्य को भोजन की आवश्यकता क्यों होती है, हमें भूख क्यों लगती है?

हम प्रति क्षण कोई न कोई शारीरिक या मानसिक क्रिया करते रहते हैं। केवल हाथों से कार्य करना, पैरों से चलना-फिरना, मुख से बोलना ही क्रिया नहीं है, अपितु हम जो श्वास लेते हैं, जो सोचते हैं और विचारते हैं ये सब भी क्रियाओं में

सम्मिलित हैं। इन क्रियाओं के करने से प्रति क्षण हमारी शारीरिक शक्ति खर्च होती रहती है और हमारे शरीर की ऊष्मा न्यून होती रहती है। इसी कमी को पूरा करने के लिये हमें भोजन और नींद की आवश्यकता होती है। क्रिया करने से हमारे शरीर की शक्ति इस प्रकार घटती है जिस प्रकार पहनने से कपड़ा पतला और कमजोर हो जाता है और बेकार होने पर हम कपड़े को फेंक देते हैं। इसी प्रकार यदि हम निरन्तर घटती हुई शरीर की शक्ति की कमी को भोजन और नींद द्वारा पूरा न करें तो यह शरीर भी कपड़े के समान फेंकनेयोग्य हो जायेगा।

इसी बात को हम दूसरे ढङ्ग से समझ सकते हैं। हमारा यह शरीर एक जीता जागता इञ्जन है। जिस प्रकार इञ्जन को चलाने के लिये कोयला (या तैल डीजल आदि), आग, पानी और वाष्प (भाप) की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हमारे इस शरीर को भी सक्रिय रखने के लिये हवा, पानी और भोजन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार इञ्जन धूंआं और राख आदि निस्सार पदार्थों को बाहर निकाल देता है, उसी प्रकार हमारा शरीर भी तत्त्वरहित पदार्थों को मल, मूत्र तथा पसीने के रूप में जो फोफस पदार्थ बाहर निकलता है, शरीर को इसी मांग का नाम भूख-प्यास है। इस भूख (मांग) को हम अन्न-पान आदि द्वारा शान्त करते रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से यह सिद्ध हो गया है कि प्राणी मात्र के शरीर का आधार खान-पान है। हम जो भी कार्य करते हैं, उससे शारीरिक शक्ति क्षीण होती है और थकावट आती है। यदि हम कार्य करते रहें और भोजन न करें तो परिणाम यह होगा कि हमारा शरीर नष्ट हो जायेगा, अतः इसी नाश से बचने के लिये भोजन किया जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र ने भोजन को सात्त्विक, राजसिक व तामसिक नाम से तीन भेदों में विभक्त किया है। सत्त्वगुण प्रधान व्यक्ति को सात्त्विक आहार प्रिय होता है। रजोगुणी को राजसिक भोजन और तमोगुणी मनुष्य को तामसिक पदार्थ ही प्रिय होते हैं। प्रत्येक मनुष्य को सदा वही आहार ग्रहण करना चाहिये जो उसके शरीर के लिये आरोग्यवर्द्धक हो, जिससे उसका शरीर नीरोग एवं बलवान् बने। मिर्च-मसालों से युक्त चरपरे और चटपटे, गले. सड़े, बासे तथा मादक पदार्थों का समावेश हमारे भोजन में कदापि नहीं होना चाहिये। क्योंकि मिर्च-मसालों से युक्त भोजन कामोत्तेजक होता है। लाल मिर्च तो ब्रह्मचर्य के लिए बहुत घातक है। अतः ब्रह्मचर्य प्रेमी इन्हें धीरे-धीरे करके सदा के लिए त्याग दें। घी, दूध, फल, मेवे आदि पौष्टिक तथा सुपच पदार्थों का ही भोजन हमें करना चाहिये। इनके सेवन से शरीर में रस, रक्त, वीर्य आदि सभी धातुओं की वृद्धि पर्याप्त रूप में होती है और ऐसे ही उत्तम पदार्थ शरीर के स्थापक होते हैं। किन्तु इन उपर्युक्त लाभकारी पदार्थों का भी हमें उतना ही सेवन करना चाहिये, जितना हमारे शरीर के लिये आवश्यक हो और सरलता से पचकर शरीर का अङ्ग बन सके। आवश्यकता से अधिक खाने से आलस्य, शरीर में भारीपन, पेट फूलना आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं, जिससे शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं और वह बीमार तथा कमजोर हो जाता है। आवश्यकता से अधिक भोजन करने से अपचन, अजीर्ण, मलबन्ध तथा धातु सम्बन्धी प्रमेह, स्वप्नदोष आदि भयंकर रोग शरीर को आ घेरते हैं। क्योंकि प्रतिदिन जो कुछ हम खाते हैं, उसके सारभाग का खून बनता है, शेष भोजन का निस्सार भाग मल के रूप में मुंह, कान, नाक और गुदा आदि द्वारा बाहर निकल जाता है। जो भाग नहीं पचता, वह पाकस्थली से निकलकर आंतों

में अटका रह जाता है और ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों-त्यों वह वहीं अटका हुआ मल सड़ता रहता है। यह सड़ा हुआ मल खून में मिलकर धीरे-धीरे सारे शरीर को विषैला और दूषित बना देता है तथा पेट के रोगों को जन्म देता है।

इसलिये महर्षि मनु ने कहा है—

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

अर्थात् अधिक भोजन रोग को उत्पन्न करने वाला, आयु को घटाने वाला, दुःखदायक, अपवित्रताकारक और संसार में निन्दित है इसलिये उसको त्याग देना चाहिये। अतः भोजन सदा परिमित मात्रा में करना चाहिये, न न्यून और न अधिक।

भोजन के छः रस

भोजन में हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हम जो भोजन करें, वह सदा एक रसवाला न हो, क्योंकि हमारे इस पाञ्च-भौतिक शरीर में छहों रसों की आवश्यकता रहती है और इस आवश्यकता की पूर्ति एकसे भोजन से नहीं होती। परिणामस्वरूप हमारा शरीर अन्य रसों की मांग करता रहता है। परन्तु एकसे भोजन में पूरे रस होते नहीं। अतः अन्य रसों के अभाव में शरीर का विकास रुक जाता है। हमारे शरीर में जिस समय जिस रस की आवश्यकता होती है तब शरीर स्वयं उसकी मांग करता है। यही कारण है कि कुछेक स्त्रियों और बच्चों में मिट्टी, कोयला और खड़िया खाने की प्रवृत्ति होती है, क्योंकि उनके शरीर में क्षारांश की कमी होती है और शरीर मांग करता है, अतः उनको न चाहते हुये भी जबरदस्ती कोयला आदि खाना पड़ता है। केवल मनुष्यों में ही यह बात नहीं है, अपितु पशुओं में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

यदि गाय आदि पशुओं के आहार में लवण रस की कमी हो तो उनकी प्रवृत्ति मनुष्यों का मल खाने की हो जाती है। इसी प्रकार बैल आदि कई पशु अपना मूत्र भी पीने के आदी हो जाते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि भोजन में सभी रसों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति होनी ही चाहिये। वे छः रस ये हैं—

खट्टा, मीठा, तीखा, खारी, कड़ुवा और कषाय।

इन रसों का वात, पित्त और कफ के साथ विशेष सम्बन्ध है।

खट्टा—यह रस पाचक, बादी-नाशक, मलमूत्र-निस्सारक, वात दोष नाशक और आमाशय को शान्ति देने वाला है। इसके अधिक सेवन से दांत खट्टे होकर निकम्मे हो जाते हैं। कफ नष्ट होकर शरीर ढीला हो जाता है। कण्ठ, छाती तथा हृदय में दाह पैदा हो जाती है।

मीठा—यह दाह और प्यास को बुझाने वाला, वर्ण निखारने वाला, नेत्र रोग नाशक, हड्डी, मांस और वीर्य को बढ़ाने वाला होता है, किन्तु इसके अधिक सेवन से कफ उत्पन्न होता है, पेट में कीड़े हो जाते हैं तथा श्वास, आंव और खांसी पैदा हो जाती है।

तीखा यह रस पाचक, कफ और कृमिनाशक तथा रक्त-शोधक है। इसके अधिक सेवन से बादी उत्पन्न होती है।

खारी—पाचक तथा मलमूत्र को साफ करने वाला है। इसका अधिक सेवन आंखों को हानि करता तथा रक्त को दूषित करता है।

कड़ुवा—यह रस ज्वर को हटाने वाला, प्यास को मिटाने वाला तथा कोढ़ और खुजली में लाभ पहुंचाता है। इसके अधिक सेवन से नसें सख्त होती हैं तथा भूख मारी जाती है।

कषाय—यह दस्त बन्द करता है, शरीर को मजबूत बनाता है तथा प्रमेह में लाभदायक है। इसके अधिक सेवन से पेट और छाती में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। शरीर कांपने लगता है तथा कमजोर हो जाता है।

भोजन में उपर्युक्त छः रसों के प्रयोग के साथ-साथ यह भी ध्यान रखा जाये कि जो आहार हम ग्रहण करें वह शुद्ध हो। क्योंकि आहार का प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

आहार के शुद्ध होने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और अन्तःकरण शुद्ध होने से स्मरणशक्ति दृढ़ होती है। अतः भोजन शुद्ध और सात्त्विक ही ग्रहण करना चाहिये।

आजकल शहरों में प्रायः लोग सस्ता मिलने के कारण गला-सड़ा, बासी पदार्थ तथा मिर्च-मसालों से युक्त चाट, पकौड़े आदि गर्म, चटपटे और चरपरे पदार्थ खाते रहते हैं। इनसे स्वास्थ्य पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, अतः इनका सेवन नहीं करना चाहिये। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि अण्डे, मांस, मछली, मद्य (शराब), चाय, काफी (कहवा), बीड़ी, सिगरेट, चुरुट, गांजा, भंग, प्याज, लहसुन आदि तामसिक और निकृष्ट पदार्थों का सेवन कदापि न किया जाये।

इस प्रकार सुखी जीवन का पहला आधार स्तम्भ "आहार" का विषय संक्षेप से पूरा हुआ।

हमारे जीवन को सुखी एवं स्फूर्तिदायक बनाने वाला दूसरा स्तम्भ है—

निद्रा

निद्रा की उत्पत्ति

चरकशास्त्र में निद्रा की उत्पत्ति तीन प्रकार से मानी हैं—

तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च मनःशरीरश्रमसमुद्भवा च ।
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा ॥

अर्थात् नींद तीन प्रकार की है—

पहली—तमोजन्य । दूसरी—आगन्तुकी । तीसरी—रात्रि-स्वभावजन्य ।

तमोजन्य निद्रा वह होती है जो तमोगुण से, कफ से और मन एवं शरीर के परिश्रम से आती है । आगन्तुकी निद्रा उसे कहते हैं, जो रोग (सन्निपात ज्वर आदि) तथा विषादि के सेवन से उत्पन्न होती है और तीसरी रात्रिस्वभावजन्य निद्रा रात्रि के समय स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है ।

इन उपर्युक्त तीनों प्रकार की निद्राओं में जो निद्रा रात्रि में स्वभाव से आती है, उसी को श्रेष्ठ मानते हुये महर्षि चरक ने भूत-धात्री अर्थात् धाय के समान प्राणियों का पोषण करने वाली कहा है । यथा—

रात्रीस्वभावप्रभवा मता या तां भूतधात्रीं प्रवदन्ति निद्राम् ।

निद्रा की आवश्यकता

यह तो पहले बता चुके हैं कि शरीर एक जीवित इञ्जन है । जिस प्रकार यदि कोई इञ्जन निरन्तर चलता रहे, उसको कभी-कभी रोककर विश्राम न दिया जाये, उसकी सफाई न की जाये या

उसके कला यन्त्र आदि खोल कर देखे न जायें तो उसके पुर्जे टूट जायेंगे या घिस जायेंगे और वह सारा का सारा इञ्जन घिस पिट कर बेकार हो जायेगा। इसी तरह यदि हम दिन-रात परिश्रम ही करते रहें और बीच में विश्राम न करें तो हमारा शरीर भी स्वस्थ नहीं रह सकता। जिस प्रकार समय-समय पर इञ्जन को खोलकर साफ करना पड़ता है तेल, ग्रीस आदि देना पड़ता है और उसकी आवश्यकतानुसार मरम्मत करनी पड़ती है। जिस प्रकार कूयें से पानी निकालने के बाद उसको कई घण्टों के लिए छोड़ दिया जाता है, जिससे वह स्रोतों से पानी लेकर फिर पानी देने के योग्य हो जाता है, उसी प्रकार हमारा शरीर भी परिश्रम के बाद विश्राम करने से पुनः नया और ताजा हो जाता है। शरीर का आलस्य और थकावट दूर हो जाती है और कार्य करने के लिये पुनः सक्षम बन जाता है। हमारा शरीर चाहे कितना ही शक्ति-शाली क्यों न हो, किन्तु वह निरन्तर परिश्रम नहीं कर सकता, अतः कार्य करते-करते जब थकावट अनुभव हो तब कुछ विश्राम अत्यावश्यक है। शरीर को पूर्ण विश्राम सोने से मिलता है। यथार्थ में गाढ निद्रा ही पूर्ण एवं सर्वोत्तम विश्राम है। क्योंकि नींद में शरीर सर्वथा निश्चेष्ट हो जाता है। दिन भर काम करते करते जो शक्ति की कमी हो जाती है, वह सोने से पुनः सञ्चित हो जाती है। यही कारण है कि सोने के बाद मन प्रसन्न और शरीर में स्फूर्ति अनुभव होती है। जीवन धारण के लिये नींद की परम आवश्यकता है। इसी बात की पुष्टि करते हुये महर्षि चरक कहते हैं—

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिकार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीबता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥

अर्थात् सुख-दुःख, पुष्टि और कृशता, बल और निर्बलता, धातुपूर्ण हृष्टपुष्ट शरीर या नपुंसकता, यही नहीं ज्ञान, अज्ञान और सब से बढ़कर जीवन और मरण भी निद्रा के अधीन हैं।

यदि मात्रानुसार उचित काल में निद्रा का सेवन किया जाये तो उपर्युक्त सुख एवं पौष्टिकता आदि उत्तम फल प्राप्त होते हैं अन्यथा अनुचित समय एवं मात्रा से अधिक सेवन की हुई निद्रा से रोगयुक्त दुःखी शरीर लेकर कष्ट भोगना पड़ता है।

निद्रा का समय

सोने के लिए रात्रि ही समुचित एवं स्वास्थ्यप्रद उत्तम समय है। रात की नींद से शरीर नीरोग रहता है और पहले दिन की थकावट तथा शारीरिक व मानसिक ह्रास पूरा हो जाता है। चरक में भी रात्रि की नींद को ही श्रेष्ठ माना है ऐसा निर्देश हम पहले कर चुके हैं। अतः रात्रि को नौ–दस बजे के बीच सो जाना चाहिये क्योंकि यही समय सोने के लिए सर्वश्रेष्ठ है।

रात्रि के आरम्भ की एक घण्टे की नींद तीसरे पहर के दो घण्टों के समान विश्रामदायक होती है। रात को शीघ्र सोने से ही प्रातः शीघ्र उठ सकते हैं। प्रातःकाल साढ़े तीन और चार बजे के बीच अवश्य उठ जाना चाहिये। इसके पश्चात् सोने से गाढ निद्रा नहीं आती, किन्तु स्वप्न आते रहते हैं। अतः स्वास्थ्यप्रेमी को प्रातः शीघ्र उठने का अभ्यास करना चाहिये। शास्त्रकारों ने कहा है—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।

अर्थात् स्वस्थ पुरुष अपनी आयु की रक्षा के लिये प्रातः (ब्राह्म-मुहूर्त्त में) उठे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी संस्कारविधि में लिखा है—"सदा स्त्री-पुरुष दस बजे शयन और रात्रि के चतुर्थ प्रहर वा चार बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म अर्थ का विचार करना।"

वेद में भी लिखा है—

उद्यन्त्सूर्यं इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे।

अर्थात् जो लोग सूर्योदय के समय सोते हैं, निकलता हुआ सूर्य उनके तेज का हरण कर लेता है। उन्हें निस्तेज बना देता है।

दिवा-शयन

स्वास्थ्य की दृष्टि से दिन में सोना हानिकर है। वैसे भी भगवान् ने दिन काम करने के लिये और रात सोने के लिये बनाई है। इसलिये बिना विशेष कारण के दिन में नहीं सोना चाहिये। रात्रि को यदि जागे हों तो जागने के आधे समय तक दिन में सो सकते हैं अन्यथा दिन में सोने से स्मृति और बुद्धि का नाश होता है। वात, पित्त, कफ कुपित हो जाते हैं और इनके कुपित हो जाने से खांसी, दमा, जुकाम, सिर में भारीपन, अङ्गों का टूटना, अरुचि, जठराग्नि की दुर्बलता आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

आयुर्वेद ने केवल ग्रीष्म ऋतु में ही दिन में थोड़ी देर तक सोना स्वीकार किया है—

ग्रीष्मे वायुचयादानरौक्ष्या रात्र्यभावतः।
दिवास्वप्नो हितोऽन्यस्मिन् कफपित्तकरो हि सः॥

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में वायु का संचय होता है। आदान काल के कारण शरीर में रूक्षता रहती है और इन दिनों रात्रि भी छोटी

होती है, इसलिये दिन में सोना हितकर है। किन्तु अन्य ऋतुओं में दिन में सोना कफ और पित्त को बढ़ाता है। इसलिये केवल ग्रीष्म ऋतु के दो तीन महीनों में आधा घण्टा मध्याह्न में सोया जा सकता है। वैसे जहां तक हो सके दिन में सोने से बचना चाहिये और ब्रह्मचारी के लिये तो दिन में सोना सर्वथा ही निषिद्ध है।

सोने की विधि

स्वास्थ्यप्रेमी को सदा बाईं करवट से सोना चाहिये। इससे सायंकाल का किया हुआ भोजन भी शीघ्र पच जाता है और वीर्याशय पर मलाशय का दबाव न पड़ने के कारण स्वप्नदोष आदि रोगों से भी मुक्ति मिल जाती है।

आयुर्वेद में दीर्घायु के लिये जहां अनेक साधनों का वर्णन मिलता है, वहां बायीं करवट से सोने का भी विधान है—

वामशायी द्विभुञ्जानः षण्मूत्रो द्वि पुरीषकः।
व्यायामी ब्रह्मचारी च शतं वर्षाणि जीवति॥

अर्थात् वामपार्श्व=बाईं करवट से सोने वाला, दिन में दो बार भोजन करने वाला, सारे दिन में कम से कम छः बार मूत्र त्याग करने वाला, दो बार मल त्याग करने वाला, व्यायामशील और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति सौ वर्ष तक सुखी जीवन बिताता है।

विशेष सूचना—रात्रि को शयन से पूर्व और प्रातः उठने के पश्चात् परमपिता परमात्मा का स्मरण अवश्य करें।

इस प्रकार सुखी जीवन का दूसरा आधार-स्तम्भ 'निद्रा' का विषय भी संक्षेप से पूरा हुआ।

हमारे जीवन में उल्लास, उत्साह एवं आनन्द का सञ्चार करके निराशा को दूर भगाने वाला जीवन का प्राणाधार तीसरा स्तम्भ है—

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य क्या है ? ब्रह्म कहते हैं ईश्वर को, जिसमें विचरण करना, घूमना ब्रह्मचर्य कहलाता है, यह ब्रह्मचर्य का मुख्य अर्थ है। किन्तु संसार में ब्रह्मचर्य से दो अर्थ और भी लिये जाते हैं—

१. वेद का अध्ययन। २. उपस्थेन्द्रिय का संयम।

महर्षि व्यास ने योगदर्शन का भाष्य करते हुये कहा है—

ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।

ये दो ब्रह्मचर्य के गौण अर्थ हैं। इस प्रकार ब्रह्म से तीन अर्थों का ग्रहण किया जाता है। १. ईश्वर, २. वेद और ३. वीर्य-रक्षण। इन तीनों की प्राप्ति के लिये जो व्रत धारण किया जाये उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं और उस ब्रह्मचर्य व्रत का जो पालन करे, वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

मनुष्य के अन्दर तीन शक्तियां हैं—१. आत्मिक, २. मानसिक और शारीरिक। इन तीनों शक्तियों के साथ उपर्युक्त ईश्वर, वेद और वीर्यरक्षण का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।

परस्पर सम्बन्धता

१. ईश्वर का आत्मिक शक्ति से सम्बन्ध है।

२. वेदज्ञान का मानसिक शक्ति से सम्बन्ध है।

३. वीर्यरक्षण का शारीरिक शक्ति से सम्बन्ध है।

क्योंकि ईश्वरभक्ति के बिना आत्मिक शक्ति नहीं बढ़ सकती। वेदज्ञान अर्थात् विद्योपार्जन के बिना मानसिक शक्ति नहीं बढ़ सकती और वीर्यरक्षण के बिना शारीरिक शक्ति स्थिर नहीं रह सकती।

अतः उपर्युक्त विवेचना से यह सिद्ध हुआ कि जिस व्रत के पालन से आत्मिक, मानसिक और शारीरिक तीनों शक्तियों का विकास होता हो, उसी का नाम ब्रह्मचर्य है। यदि इन तीनों शक्तियों में से एक भी शक्ति अधूरी हो तो ब्रह्मचर्य भी पूर्ण नहीं माना जा सकता। इसलिये 'आत्मिक शक्ति', 'मानसिक तेज' और 'शारीरिक वीर्य' को सदा सुरक्षित रखना, कभी भी भोगों में गिर कर उसका क्षय न होने देना, यही वह ब्रह्मचर्य का कठिन तप है, जिससे मृत्यु को जीतकर मोक्ष का सच्चा परमानन्द पाया जा सकता है।

अब हम अच्छी प्रकार समझ गये कि सब शक्तियों का मूल ब्रह्मचर्य है। यद्यपि आत्मिक शक्ति का उद्गम ईश्वर भक्ति है और मानसिक शक्ति का वर्द्धक ज्ञान है तो भी इसका प्राण एक ही वस्तु है, वह वस्तु है—वीर्य। निस्संदेह वीर्य से बढ़कर इस संसार में और कोई शक्ति नहीं है। वास्तव में यह सर्वोच्च शक्ति है। अथवा इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि वीर्य के आधार पर ही शरीर का संसार बसा हुआ है। वीर्य के कारण ही हमारा शरीर गतिमान् है। यदि हमारे शरीरों से वीर्यतत्त्व को पृथक् कर दिया जाये तो शरीर मिट्टी के ढेर मात्र शेष रह जायेंगे। अथवा बिना तैल के दीपक की भांति यह शरीरदीप बुझ जायेगा।

जब वीर्य इतना महत्त्वपूर्ण पदार्थ है तो यह जानना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वीर्य क्या वस्तु है। क्योंकि इसे जाने बिना इससे पूर्ण लाभ उठाना और इसकी रक्षा करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

वीर्य क्या है ?

वीर्योत्पत्ति के विषय में आयुर्वेद के ग्रन्थ सुश्रुत में पूरा वर्णन

मिलता है—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः ।।

अर्थात् खाये हुए भोजन का सब से पहले रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद (चर्बी), मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से अन्तिम धातु वीर्य बनता है जिसे शुक्र भी कहते हैं।

हमारे शरीर में खाये हुए भोजन को पचाने के लिए एक आमाशय है। हम जो कुछ खाते हैं, वह सबसे पहले आमाशय में पहुँचता है। आमाशय भोजन को पका कर उसमें से रस अलग कर देता है और शेष भाग को मल–मूत्र के रूप में मलाशय और मूत्राशय में भेज देता है। वह बचा हुआ रस फिर पकता है और उसके दो भाग हो जाते हैं। उसमें से एक भाग तो रक्त का रूप धारण कर लेता है और दूसरा भाग फिर पकता है, उसमें से भी कुछ मल निकल कर उसके भी दो भाग हो जाते हैं। उसके एक भाग से मांस बनता है और दूसरा भाग फिर जठराग्नि द्वारा पकाया जाता है, पकने पर पुनः दो भाग बनते हैं, एक भाग की चर्बी बन जाती है और दूसरा भाग फिर पकता है, उसके भी दो भाग बनते हैं, एक भाग से हड्डियां तैयार होती हैं और दूसरा भाग फिर पकाया जाता है, पकने पर वह पुनः दो भागों में बंट जाता है, एक भाग से मज्जा बन जाती है और दूसरा भाग पुनः पकता है। इस प्रकार जब सब विकार समाप्त हो जाते हैं और तब जो भाग शेष बचता है उसी का नाम वीर्य है। अर्थात् किये हुए सारे भोजन का सब से पहले रस बनता है और फिर वह रस निरन्तर पकता रहता है। उससे क्रमशः रक्तादि धातुयें बनती रहती हैं. इस प्रकार

पकते-पकते बिल्कुल शुद्ध भाग जो बचा वह वीर्य कहलाया। एक मन भोजन से एक सेर रक्त बनता है और एक सेर रक्त से एक तोला वीर्य तैयार होता है।

रक्त, मांस आदि एक-एक धातु के बनने में प्रत्येक के लिए ५-५ दिन से अधिक काल लगता है, इस प्रकार वीर्य तक सब धातुओं के निर्माण में महीने भर से अधिक समय लगता है। भोज ने भी कहा है—

धातौ रसादौ मज्ज्ञान्ते प्रत्येके क्रमतो रसः।
अहोरात्रात्स्वयं पञ्च सार्द्ध दण्डं च तिष्ठति॥

रस से लेकर मज्जा तक प्रत्येक धातु निर्माण में पांच दिन रात और डेढ़ घड़ी (३६ मिनट) समय लगता है, इस प्रकार ती दिन रात और ९ घड़ी (३ घण्टे ३६ मिनट) का समय वीर्य बनने लगता है।

हमारे शरीर में वीर्य से अलग ओज नाम का एक पदार्थ औ भी होता है। इसी ओज के कारण शरीर की शक्ति स्थिर रहत है। इस ओज का निर्माण भी वीर्य से होता है, जिसके शरीर वीर्य जितनी अधिक मात्रा में होगा, उसमें ओज भी उतनी प्रचुर मात्रा में मिलेगा। ओज वीर्य का निष्कर्ष रूप है। ओज महिमा का बखान करते हुये कहा है—

ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।
यन्नाशे नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम्॥

अर्थात् ओज रस से लेकर वीर्य तक सभी धातुओं का निष्क रूप है, तेज है, जिसके नाश से जिन्दा नहीं रह सकता और उस

रहने से ही जीवन धारण किया जा सकता है।

अब प्रश्न होता है कि जीवन का यह अमूल्य निधि वीर्य शरीर के किस भाग में रहता है।

वीर्य कहां रहता है ?

इस विषय में अनेक विचार मिलते हैं। कई कहते हैं कि वीर्य सम्पूर्ण शरीर में फैला हुआ है। दूसरे कहते हैं कि वीर्य सारे शरीर में न होकर शरीर के एक ही भाग में इकट्ठा रहता है। चाहे कोई कुछ भी माने या कहे, किन्तु यही मत उचित प्रतीत होता है कि वीर्य हमारे सारे शरीर में फैला हुआ है, क्योंकि यदि वीर्य एक ही स्थान में होता तो उसके अभाव में या नष्ट हो जाने पर केवल उसी स्थान को क्षति पहुँचनी चाहिये थी, जहां वह रहा करता है, किन्तु देखने में ऐसा नहीं आता। जब कोई मुमूर्षु विषयी कीट अपने इस अमूल्य रत्न वीर्य का नाश करता है, तब उसके शरीर की सभी नस नाड़ियां सिहर उठती हैं और सम्पूर्ण शरीर पर एक भयङ्कर धक्का लगता है, जिसके कारण शरीर के सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल पड़ जाते हैं और उनका विकास इस प्रकार रुक जाता है, जिस प्रकार चलते हुए कारखाने में से बिजली के चले जाने पर सारा कारखाना एकदम बन्द हो जाता है और बिजली आने पर कारखाने का काम फिर चल पड़ता है, ठीक उसी प्रकार इस शरीर रूपी कारखाने में से वीर्य रूपी बिजली के चले जाने पर शरीर का सारा विकास ठप्प हो जाता है और व्यायाम तथा सच्चरित्रता आदि के द्वारा उसमें वीर्य रूपी बिजली के दोबारा आने पर फिर चल पड़ता है। अतः इससे यही सिद्ध होता है कि वीर्य शरीर के किसी एक भाग में न होकर दूध में घी की तरह शरीर के प्रत्येक अणु-अणु में रमा हुआ है।

हमारे ऋषि-महर्षियों ने भी इसी बात को कहा है—

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा ।
एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ।।

अर्थात् जिस प्रकार दूध में घी और ईख में रस व्यापक रहता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर में वीर्य भी व्याप्त रहता है। जिस तरह दूध को मथने (बिलोने) से घी और गन्ने को पेरने से रस निकलता है, और निस्सार छाछ और खोई बच जाती है (खोई उसे इसलिये कहते हैं कि उसने अपने सार को खो दिया होता है) इसी प्रकार जो अभाग्यशाली पुरुष अपने पुष्ट शरीर रूपी गन्ने को गन्दे और उत्तेजक विचार रूप कोल्हू में पेरेगा तो उसका भी शरीर खोई नाम पायेगा और सभी उसको अग्नि में जलाया करेंगे। जिसके शरीर से यह अमूल्य तत्त्व निकल जाता है, उसके शरीर की अवस्था निचोड़े हुए निम्बू या सन्तरे जैसी हो जाती है, क्योंकि जब कोई मनुष्य कुकृत्य करता है तो शरीर के समस्त परमाणुओं से वीर्य खिचा चला आता है और वीर्य के खिचते ही शरीर भी उसी क्षण निस्तेज, निर्बल व अस्वस्थ हो जाता है। जिस प्रकार जब तक दीपक में तैल होता है, तब तक तो वह घर को अपने प्रकाश से जगमगाता रहता है, किन्तु जब उसमें तैल समाप्त हो जाता है तो वह बुझ जाता है, जिससे घर में अन्धकार छा जाता है। ठीक यही अवस्था शरीर की होती है, जब तक शरीर में वीर्य पर्याप्त रूप में रहता है तब तक तो शरीर में उत्साह, स्फूर्ति, बल, आनन्द और कान्ति दिखाई देती है, किन्तु शरीर के राजा वीर्य के नष्ट होते ही उसके अनुगामी उत्साह, स्फूर्ति आदि भी इस जर्जर शरीर को व्यर्थ जानकर वहां से लुप्त हो जाते हैं और अन्त में यह शरीर रूपी दीपक सदा-सदा के लिये बुझ जाता है।

वीर्यरक्षा का महत्त्व

संसार में यदि कोई मूल्यवान् रत्न है तो वह वीर्य ही है। यह वीर्य संसार की समस्त सम्पत्तियों के बदले में भी नहीं खरीदा जा सकता। यह एक सञ्जीवनी बूटी है, जो इसकी रक्षा कर लेता है, वह विद्या, तेज का आगार बन जाता है। यह वीर्य ही हमारे सुखी जीवन का मुख्य आधार स्तम्भ है। आधार के गिरने से जिस प्रकार महल गिर जाता है, उसी प्रकार वीर्य के नष्ट होने से शरीर का भी नाश साथ-साथ हो जाता है। इसीलिए किसी ने कहा है—

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्।
तस्मादतिप्रयत्नेन कर्त्तव्यं विन्दुधारणम् ॥

अर्थात् वीर्य की एक बूंद भी नष्ट करना मृत्यु है और इस वीर्य रूप सञ्जीवनी रस को एक-एक बूंद को धारण करना जीवन है, इसलिए अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक वीर्य की रक्षा करनी चाहिये। वस्तुतः वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है।

अतः इस शक्ति सम्पन्न वीर्य की रक्षा बहुत यत्न से करने की आवश्यकता है। इसी के बल पर मनुष्य देवता बन सकता है। यह शरीर का सार है। वीर्य को साधने वाला संसार को भी वश में कर सकता है। कहा भी है—

सिद्धे विन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।

अर्थात् अत्यन्त परिश्रम पूर्वक वीर्य विन्दुओं को अपने शरीर में सुरक्षित रखने वाले अखण्ड ब्रह्मचारी के लिए संसार में कौन-सा ऐसा काम है जो असम्भव व असाध्य हो।

वास्तव में वीर्य, शक्ति का अजस्र स्रोत है। जब तक शरीर में वीर्य रहेगा, तब तक उसमें बल, उत्साह और कार्यक्षमता बनी रहेगी। जिसने वीर्यरक्षण द्वारा अपने को शक्तिमान् बना लिया है वह सारे संसार को हिला सकता है।

इसी वीर्य के कारण वज्राङ्गबली श्री हनुमान् ने समुद्र को लांघकर अकेले लङ्का को जलाया। इसी वीर्य के प्रताप से महाभारत युद्ध में बाल-ब्रह्मचारी भीष्म पितामह ने १७५ वर्ष के वृद्ध होते हुए भी अपने प्रलयङ्कारी युद्ध से पाण्डव पक्ष को थर्रा दिया था। इसी वीर्य का वह अद्भुत चमत्कार था, जो महर्षि दयानन्द ने पाखण्डों का खण्डन करके वैदिक धर्म ध्वजा फहराते हुए १७बार जहर के प्याले पिये और बदले में हमें उस अखण्ड ब्रह्मचारी ने अमृत पिलाया। कलियुगी भीम राममूर्ति का भी उदाहरण हमारे सामने है। राममूर्ति ने अपने ब्रह्मचर्य के ही बल पर संसार भर के पहलवानों को ललकारा था।

स्वयं को राष्ट्र की बलिवेदी पर होम करने वाले वीरवर भक्तसिंह, ब्रह्मचारी रामप्रसाद विस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद और अशफाक उल्ला खां आदि ब्रह्मचर्य के दीवानों ने इसी वीर्य के अमित तेज से विदेशी अंग्रेजों को सात समुद्र पार ले जाकर छोड़ा। अधिक दूर क्यों जायें, अभी थोड़े ही दिन की बात है, बाल ब्रह्मचारी नेता जो सुभाषचन्द्र बोस ने अपने अतुल पराक्रम के कारण, उन अंग्रेजों को, जिनके राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, नाकों चने चबाये और उनके सिंहासन को डगमग कर दिया।

कहां तक वर्णन करें, इतिहास के पन्ने ब्रह्मचारियों के अद्भुत कृत्यों से भरे पड़े हैं। वीर्य की महिमा अपार है, अनन्त है, अपरिमेय है। वीर्य धारण से मनुष्य में अद्वितीय शक्ति का उदय होता

है, जिसके कारण ब्रह्मचारी संसार के बड़े से बड़े काम बड़ी सरलता से कर डालता है। आज तक सृष्टि में जितने भी विशेष परिवर्तन हुए हैं, चाहे राजनैतिक, चाहे धार्मिक, वे सब ब्रह्मचारियों द्वारा ही हुए हैं और अब भी यदि भारत देश का कायाकल्प होगा तो, वह भी ब्रह्मचारियों के ही द्वारा होगा, अन्य किसी से नहीं।

अतः प्रत्येक बुद्धिजीवी का यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह शक्तियों के स्रोत वीर्य की प्राणार्पण से रक्षा करके इसकी प्रचण्ड शक्ति की दिव्य छटा का अनुभव करे और दूसरों को कराये। क्योंकि मनुष्य की स्मरणशक्ति, मेधाशक्ति और विवेकशक्ति का मूलाधार वीर्य ही है, वीर्य को शरीर में सुरक्षित खपाने वाले ब्रह्मचारी के शरीर में सदा चुस्ती और फुर्ती रहती है, आलस्य तो उसके पास फटकता तक नहीं, प्रत्येक कार्य को वह प्रसन्नता एवं उत्साह के साथ करता है। उसको कभी कोई रोग नहीं सताता। हमारे ऋषि-महर्षियों ने वीर्य को परमौषध बताया है।

एक बार महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज के पास उनके सभी शिष्य मिलकर गये और हाथ जोड़ कर कहने लगे कि हे गुरुदेव ! हम तो रोगों के शमन के लिये औषधि खाते-खाते तंग हो चुके। हमें तो आप कोई ऐसा महौषध बतला दीजिये, जिस एक के ही सेवन से सभी रोग समाप्त होते हों।

शिष्यों की इस प्रार्थना को सुनकर महर्षि धन्वन्तरि जी मुस्कराते हुये कहने लगे, यदि तुम सर्वरोगनाशक एक ही औषध चाहते हो तो, लो ध्यान से सुनो—

मृत्युव्याधिजरानाशि पीयूषं परमौषधम् ।
ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यहम् ॥

शान्ति कान्ति स्मृतिं ज्ञानमारोग्यञ्चापि सन्ततिम् ।
य इच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह ॥

ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।
ब्रह्मचर्यमयो ह्यात्मा ब्रह्मचारिणि तिष्ठति ॥

ब्रह्मचर्यं नमस्कृत्य चासाध्यं साधयाम्यहम् ।
सर्वलक्षणहीनत्वं हन्यते ब्रह्मचर्यया ॥

अर्थात् यह मैं सच कहता हूँ कि मृत्यु, रोग तथा बुढ़ापे का नाश करने वाला अमृत रूप बड़ा उपचार ब्रह्मचर्य रूप महायत्न है। जो शान्ति, सुन्दरता, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम सन्तति चाहता हो, वह इस संसार में सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करे। ब्रह्मचर्य ही परमज्ञान और परम बल है। यह आत्मा निश्चय रूप से ब्रह्मचर्यमय है और अपनी स्थिति भी मनुष्य शरीर में ब्रह्मचर्य से ही होती है। ब्रह्मचर्यमय परमात्मा का नमस्कार कर मैं असाध्य रोगियों को भी चंगा कर देता हूँ। इस ब्रह्मचर्य की रक्षा से सब तरह के अशुभ नष्ट हो जाते हैं।

केवल रोग ही नहीं, किन्तु देवता तो वीर्यरक्षण रूपी घोर तप के द्वारा सारे संसार को हड़प जाने वाली मृत्यु को भी जीत लेते हैं—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।

महाभारत युद्ध के अमर सेनानी भीष्म पितामह तथा नवयुग-निर्माता बालब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द का उदाहरण हमारे सम्मुख

है। कौन नहीं जानता कि इन दोनों ब्रह्मचारियों ने मृत्यु को भी बुरी तरह लताड़ा था।

सचमुच यह ब्रह्मचर्य आनन्द का अजस्र स्रोत है, आशा का दीप है, और संसार सागर से पार उतरने की दिव्य नौका है। यह हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों की अक्षुण्ण धरोहर है।

परन्तु बड़े दुःख की बात है कि जिस ब्रह्मचर्य (वीर्य) के इतने अद्भुत गुण हैं, उस अमूल्य वस्तु को भी अज्ञानी मानव अपना भूत भविष्यत् कुछ भी न सोचते हुये केवल क्षणिक व तामसिक, नामधारी आनन्द के लिये अपने हाथों नष्ट कर देता है। अन्त में रोता और पछताता है। किन्तु जब सांप निकल गया, तो खाली लकीर पीटने से क्या बनता है। अतः ऐ मेरे भोले भाइयो! यदि आप अपना कल्याण चाहते हो, आप भी भीष्म और दयानन्द की भांति मृत्यु को जीतना चाहते हो, तो इस सञ्जीवनी बूटी वीर्य को अपने अन्दर धारण करो। यह अमरबूटी है, अमृतधारा है। अन्दर जाते ही सब रोग नष्ट हो जायेंगे और फिर से नवजीवन का सञ्चार होगा। जो इसका पान करेगा वह मालामाल हो जायेगा। उसका शरीररूपी महल अजेय और अभेद्य दुर्ग बन जायेगा और जब तक जीयेगा तब तक सुखी जीवन बितायेगा। यही नहीं, मृत्यु के बाद अगला शरीर भी स्वस्थ, सुन्दर व सुडौल पायेगा।

—:०:—

राष्ट्र के भावी कर्णधार बालकों से

किसी भी देश का भविष्य उसकी उन्नति व उसके गौरववृद्धि का भार उस देशके बालकों पर निर्भर होता है। वस्तुतः बालक जाति की पूञ्जी और देश की अमूल्य सम्पत्ति होते हैं। बालक ही देश की उमंगें व आशायें होते हैं। बालकों को ही आगे चलकर देश का निमार्ण करना है, ये उन्नति और वैभव के मूलाधार हैं। आज जो बालक हैं कल उन्हें ही राष्ट्र का कर्णधार बनना है। देश का उज्ज्वल या काला, उन्नत या अवनत भविष्य वहां के बालकों पर निर्भर होता है। यदि देश के बालकों का उत्थान हुआ तो देश का उत्थान होना निश्चित है और यदि बालकों का पतन हुआ तो देश का भी अधः पतन अवश्यम्भावी है। बालक देश के वे उदीयमान नक्षत्र हैं, जिन्हें अपने उज्ज्वल प्रकाश से देश को आलोकित करना है। इन्होंने ही आगे चलकर राष्ट्र के राजसिंहासन को विभूषित करना है। किन्तु बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि जो बालक राष्ट्रनौका के भावी खिवैया हैं, जो राष्ट्र के आधार और सर्वस्व हैं, आज उनके निर्माण पर किसी का भी ध्यान नहीं है। आजकल मूर्ख माता-पिता पशुओं को तो स्वस्थ व बलवान् बनाने का यत्न करते हैं, प्ररन्तु अपने जिगर के टुकड़े, कोमलहृदय बालकों की उन को कोई चिन्ता नहीं। उनका पैदा करना कार्य था, अब उनकी तरफ से वे बनें या बिगड़ें। माता-पिता या गुरुजनों की ही अज्ञानता के कारण आज देश का एक-एक बच्चा विषयाग्नि में झुलस रहा है। विषयों की इस भयङ्कर तपन व घुटन ने देश की इन कलियों को खिलने से पहले ही मुर्झा दिया है। आज कोई भी ऐसा बालक अथवा युवक नजर नहीं आता, जिसका मुखमण्डल गुलाब के फूल की तरह खिल रहा हो, जिसकी आवाज में सिंहशावक सी

दहाड़ हो। हाय ! आज देश के होनहार बालकों की कैसी बुरी दशा हो गई है। सभी के मुख मुर्झाये पड़े हैं, किसी में भी पौरुष नहीं रहा। साहस और युक्ति का शरीर में नाम नहीं रहा। उठते बैठते चक्कर आते हैं। हर समय सिर में दर्द रहता है। आंखों से दीखना कम हो गया, चश्मा चढ गया। जवानी से पहले ही बुढ़ापा आगया है। सभी में निराशा छाई हुई है, कितने दुःख की बात है यह। जिस देश के बालक शेरों के दाँत गिना करते थे, उसी देश के बालक आज निर्वीर्य हो गये हैं। भला ! ऐसी अवस्था में इनसे यह आशा करना कि ये बालक देश को उन्नत कर, उसे पुनः प्राचीन गौरव प्राप्त करायेंगे, बालू से तैल निकालने के बराबर है। इनसे तो तभी आशा की जा सकती है जब देश में पुनः भरत जैसे निर्भीक बालक, अभिमन्यु जैसे सिंहसपूत और भीष्म जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ पैदा होंगे और ये ऐसे तब बन सकते हैं, जब इनको पूर्ण नियन्त्रण में रखकर इन्हें सदाचारी और ब्रह्मचारी बना दिया जायेगा।

क्योंकि संसार शक्तिशालियों के लिये है। "वीरभोग्या वसुन्धरा" कमजोर और कायरों के लिये संसार में कुछ नहीं है। जिसकी भुजाओं में बल-पराक्रम होता है, वे ही दुनियां में राज्य किया करते हैं।

इसलिए ऐ मेरे भाइयो ! अब सावधान हो जाओ। नींद को दूर भगा दो, आलस्य को त्यागो। अब तक बहुत सो चुके और बहुत खो चुके, किन्तु अब कटिबद्ध होकर ब्रह्मचर्य की रक्षा करो, इसी से आप अपने खोये हुये वैभव को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। यदि आपने अब भी वीर्य की रक्षा का यत्न नहीं किया तो आपका जीवन पूर्ववत् दुःख, निराशा और चिन्ताओं से भरा रहेगा।

अतः प्यारे बालको ! यदि आप अपना कल्याण चाहते हो

तो अब आपको अवश्य सम्भलना होगा। वीर्य का रक्षा तन, मन, धन से करनी होगी। माता, पिता, गुरु आदि ने यदि आपकी चिन्ता नहीं की, या आपको सावधान नहीं किया, तो अब आपको ही अपने पैरों पर खड़ा होना होगा। केवल उनको दोष देते रहने से काम नहीं चलेगा। यह तो मैं मानता हूं कि आपको बचाना माता, पिता, गुरु आदि का कर्त्तव्य था, आप जो पतित हुये, निस्सन्देह यह दोष उनका है। किन्तु प्यारे मित्रो ! मैं तो आपको चेतावनी देना चाहता हूं कि दोष चाहे जिसका भी हो, यदि आप अब भी नहीं सावधान हुये, अब भी यदि आपने शरीर के आधार वीर्य को रक्षा नहीं की, तो याद रखो ! हानि आपको उठानी पड़ेगी, हर हालत में आपको उठानी पड़ेगी, आपको इस भूल का कुपरिणाम भुगतना पड़ेगा। अतः सावधान हो जाओ। जब आंखें खुलें तभी प्रभात समझो और खड़े होकर अपनी उन्नति में लग जाओ, केवल अपने पतन को देखकर रोने-धोने से काम नहीं चलेगा। भूत की भूलों से शिक्षा लेकर भविष्य को सम्भालो। इसी में आपका और देश का कल्याण है।

हमारे ऋषि-महर्षियों ने मानव जीवन को तीन विभागों में विभक्त किया है—१. बाल्यावस्था, २. युवावस्था और ३. वृद्धावस्था। बाल्यावस्था मानव का आधार है अर्थात् नींव है। जिस प्रकार मकान को मजबूत और अधिक टिकाऊ बनाने के लिए नींव का मजबूत बनाना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि जिस मकान की नींव गहरी और अच्छी नहीं होगी वह मकान कभी भी गिर सकता है, उसका कोई विश्वास नहीं। इसी प्रकार हमारे मानव जीवन रूप मकान की नींव बाल्यावस्था का भराव भी यदि अच्छा ठोस नहीं हुआ तो हमारा यह मकान कभी भी धड़ाम से गिर सकता है। इसलिए बचपन को बहुत सुदृढ़ बनाना चाहिए, जिससे इस

पर बनने वाला भवन अधिक काल तक स्थिर रह सके। जिसने इस पर ध्यान नहीं दिया, नींव को मजबूत नहीं बनाया तो उसे चाहिए कि वह इस भवन (शरीर) में रहकर सुख पाने की आशा छोड़ दे।

अतः प्रिय बालको ! आपको अपना जीवन सुखी बनाना है तो अपनी नींव 'बचपन' को गढना पड़ेगा, यदि आपने यत्न करके बाल्यवस्था का निर्माण ठोस कर लिया तो संसार में कोई शक्ति नहीं जो आपको सुख से वञ्चित कर सके। बचपन ही मनुष्य के बनने और बिगड़ने का समय होता है। जो सौभाग्यशाली इस अवसर में सम्भल कर चलता है जो एक-एक कदम को खूब सोच-विचार कर रखता है, वह अपने सारे जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करता है और जो इस निर्माण के अमूल्य अवसर को दुष्टवृत्तियों में फंस कर खो देता है, वह सदा दुःखी एवं रोगों का घर बनकर जीवन की घड़ियां ही गिना करता है।

पतन के कारण

पतन का पहला कारण

इसी बाल्यकाल में एक ऐसा अवसर भी आता है, जब बालकों के हृदय में मित्रता की लहर उठा करती है। उसी लहर में बहकर बालक मित्रता की धुन में रहा करते हैं और उसी धुन में वे किसी न किसी को अपना साथी बना लिया करते हैं। धीरे-धीरे उन दोनों का एक दूसरे की तरफ खिचाव बढ़ता जाता है और एक दिन दोनों को साफ-साफ अनुभव होने लग जाता है कि वे दोनों आपस में एक दूसरे की तरफ अधिकाधिक खिंचे चले जा रहे हैं। पढ़ाई के अतिरिक्त समय को साथ ही रहकर बिताने का जी चाहा करता है। धीरे-धीरे ऐसी इच्छा होने लगती है कि हम

दोनों सदा साथ ही रहें। सारी शक्तियां वहीं केन्द्रित हो जाती हैं। अलग होने को मन नहीं करता, जब वे इकट्ठे न हों तो एक दूसरे की आकृतियाँ आंखों में घूमा करती हैं। यदि कभी अलग होने का अवसर आ जाता है तो दोनों बिना पानी मछली की तरह छटपटाने लगते हैं। इस प्रकार उन दोनों की यह मित्रता दिनोंदिन बढ़ती चली जाती है यहां तक कि देखने में वे एक दूसरे के लिए जिया और मरा करते हैं।

इस प्रकार मित्रता का यह छोटा-सा नाटक प्रायः प्रत्येक बालक के बचपन में खेला जाता है। इस खेल में दोनों के मन में लेश मात्र भी पाप वासना नहीं होती। किन्तु उन भोले बालकों का यह निष्कलङ्क नाटक अधिक समय तक इसी रूप में नहीं चलता। एक समय ऐसा आता है कि उन भोले बालकों का यह हवाई महल बालू के गढ की तरह सदा के लिए ढह जाता है।

यदि उनका यह मित्रता का नाटक केवल नाटक ही रहे और फिर यदि ढह भी जाए, तो कोई दुःख की बात नहीं। परन्तु कुछ ही समय में वे दोनों इस नाटकीय खेल की सीमा को लांघ जाते हैं और ज्यों-ज्यों प्रेम की लहर में बहते जाते हैं, त्यों-त्यों मित्रता के पीछे छुपे जान-माल लेवा विषयरूप भयङ्कर भंवर में फंसने लगते हैं उनके बालसुलभ निष्कलङ्क जीवनाकाश पर भ्रष्ट प्रेम की काली घटायें छाने लगती हैं और दूषित वासनारूप पानी की मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो जाती है। वह पवित्र प्रेम, विशुद्ध प्रेम न रहकर, दूषित प्रेम में बदल जाता है। इसीलिए किसी मनोवैज्ञानिक ने संसार को सावधान करते हुये कहा है—

न इतने दूर जाओ तुम कि जीवन -भार हो जाये।
न इतनें पास आओ तुम कि दूषित प्यार हो जाये॥

इसलिए बालको ! इस प्रकार की भ्रष्ट मित्रता से बचो, नहीं तो अपना सर्वनाश कर बैठोगे। इस नाटक से ही आपके लिए नरक का फाटक खुल जाएगा। मित्रता तो करो, परन्तु उपर्युक्त जीवन रहस्य के परमोत्तम सूत्र दोहे को सदा अपने हृदय में स्थापित किये रखो। यह आपके जीवन को भ्रष्ट होने से बचायेगा।

पतन का दूसरा कारण

जब तक बालक आचार की दृष्टि से निष्कलङ्क और निष्पाप होता है, तब उसके स्वस्थ, सुन्दर और बलवान् शरीर की कमनीयता को देखकर कई विषयी कीट जो अपना सर्वनाश कर, फिर दूसरों की खोज में निकला करते हैं वे शिकारी कुत्ते उन सुकोमल बालकों को अपने जाल में फंसाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया करते हैं। कभी वे बालक को उसका हितचिन्तक जताया करते हैं, तो कभी कहते हैं कि हम तेरे बिना क्षणभर भी नहीं जी सकते। कभी उसे कुछ खाने को दिया करते हैं, तो कभी आपत्ति के समय एक-दो बार दिखाने के लिए किसी प्रकार की सहायता कर दिया करते हैं। इस प्रकार वे दुष्ट उस बालक रूप सुगन्धित फूल पर भौरों की भांति मंडराने लगते हैं और वह भोला बालक उनको अपना हितैषी, समझ उन कपटी चोर लुटेरों पर विश्वास कर बैठता है। वह नहीं समझ पाता कि भगवान् ने मुझे जो यह सौन्दर्य का धन दिया है, उसी को हड़पने के लिए ये डाकू तरह-तरह के प्रलोभन तुझे दे रहे हैं। वह नहीं समझता कि यह प्रेम झूठा और फंसाने के लिए किया जा रहा है और वह बालक उनको मित्र मान, उन द्वारा किये हुये वासना रूप विष को अमृत समझ खो बैठता है। किन्तु वह बालक यह नहीं सोचता कि ये तुझे लूट कर तेरा सर्वनाश कर देंगे। वह नहीं जानता कि जब यह चरित्र

धन एक बार लुट जाता है, तो यह दर-दर की भीख मंगवा कर ही छोड़ता है।

इसलिए हे बालक! यह मत समझ कि जो आज मित्र बन कर तेरी सेवा सुश्रूषा कर, तुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दे रहे, वे आगे भी ऐसा ही करते रहेंगे। यह तो सब तभी तक तुझ पर लट्टू हो रहे हैं, जब तक तेरे अन्दर सौन्दर्य का समुद्र ठाठें मार रहा है। इसके समाप्त होते ही ये कपटी तुझे सदा के लिये बर्बाद करके रोने-धोने के लिये छोड़ कर चले जायेंगे। फिर तुझे आंसू पौंछने वाला भी कोई नहीं मिलेगा, क्योंकि गिरते हुए को इस संसार में प्रायः सभी धक्का देकर जल्दी गिराने का यत्न किया करते हैं।

अतः हे भारत मां के लाडले सपूत! ऐसे खुशामदी टट्टुओं से सावधान रहना। वे जब भी कोई वस्तु खाने की या अन्य किसी प्रकार की दें, तो तुरन्त निषेध कर देना, कदापि स्वीकार न करना और उनसे सदा दूर रहना, इसी में तेरा भला है, इसी में तेरा कल्याण है। यदि तू इन क्रूर भेड़ियों के जाल में फंस गया, तो वे तेरे जीवन रस की एक-एक बूंद को चूसते चले जायेंगे और तू मुरझा कर, मिट्टी में मिल जायेगा। अतः भोले बालक! सावधान हो जा। अपने जीवन को किसी के हाथों में यों ही बर्बाद न करवाना। जीवन का यह समय बड़ा उत्तम होता है, जो इसको बचा लेता है, उसका जीवन सुखपूर्वक बीतता है। किन्तु जो इनके जाल में फंस जीवन धन को लुटवा देता है, वह पापों के कारण प्रकृति द्वारा तड़फाया जाता है। इस प्रकार की मित्रता तुझे बर्बाद कर देगी और जब यह समाप्त होगी तब तक तेरा सारा जीवनरस चूस लिया गया होगा। इसलिए असली और नकली मित्रों में भेद करके

सीख। यदि एक बार भी ठगा गया, तो जीवन के उच्च शिखर से फिसल कर चकनाचूर हो जाएगा। ऐसे जीवनधन के लुटेरों से सावधान रहना। उन्हें पास तक मत फटकने देना। उन कामी कुत्तों को दूर से ही दुत्कार देना।

याद रख ! भगवान् ने तुझे यह सौन्दर्य वहुत लम्बी और घोर तपस्या के बाद दिया है। यदि इसे इस जीवन में सुरक्षित न रख कर अपने सर्वनाश का कारण बनाया, तो आगे सौन्दर्य मिलना तो दूर, मनुष्य जन्म से भी हाथ धोने पड़ेंगे।

पतन का तीसरा कारण

बालकों को बिगाड़ने में आजकल के स्कूल-कालिजों का भी मुख्य हाथ है। इनमें बालक जाते तो इसलिए हैं कि वे चरित्रवान् एवं कर्मठ विद्वान् बनेंगे। किन्तु वहां उन्हें सँसार की प्रायः सभी बुराइयों में दीक्षित कर दिया जाता है। आजकल विद्यालय ही भ्रष्टालय बने हुये हैं। बड़े विद्यार्थियों के साथ-साथ कितने ही अध्यापक भी बुराइयों को सिखा देते हैं। ऐसे पतित अध्यापकों को क्या कहें, क्या न कहें, कुछ समझ में नहीं आता। जो राजगुरु के स्थान पर बैठे हों, जो राष्ट्रनिर्माता कहलाते हों, जिन पर देश के नौनिहालों का भविष्य निर्भर हो, वे ही यदि कर्त्तव्यभ्रष्ट हो जायें, जब माली बाग को उजाड़ने लगे, जब बाड़ ही खेत को खाने लगे, तो फिर रक्षा कौन कर सकता है और इससे बढ़कर धर्म, जाति और देश का दुर्भाग्य क्या हो सकता है।

इसलिये कहता हूं प्यारे बालको ! बचो ! बचो !! इन दुष्टों के पंजों में न फंसना। आंखें खोलकर चलना तुम्हारे चारों ओर तुम्हें निगलने के लिए भयङ्कर अजगर और मगर मुँह बाए खड़े हैं। यदि तुमने किञ्चित् भी आलस्य किया, जरा भी असावधान हुये,

तो ये क्रूर तुम्हें अपने मजबूत जबड़ों में जकड़लेंगे। परन्तु बालक! इनको देखकर तुम घबरा मत जाना। कहीं धैर्य न खो बैठना। मन में यह नहीं सोच लेना कि हम तो अब बच ही नहीं सकते, किन्तु ऐसी बात नहीं है, अच्छे कामों में सदा आपत्तियां आया हो करती हैं और जो इन आपत्तियों की परवाह न करके आगे ही आगे बढ़ता जाता है, वही मनुष्य अपनी उद्देश्यपूर्ति में सफल होता है। और वही उसके पौरुष की सही परीक्षा होती है। इसलिए कवि ने कहा है—

वह पथ क्या, पथिक कुशलता क्या,
जिस पथ में बिखरे शूल न हों।
नाविक की धैर्य परीक्षा क्या,
जब धारा ही प्रतिकूल न हो॥

इसलिए घबराओ नहीं। अपने मन को मजबूत करके आपत्तियों से सदा टक्कर लेकर आगे बढ़ते रहो, सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।

पतन का चौथा कारण

आजकल की प्रचलित अश्लील तथा लज्जाजनक पुस्तकों का अध्ययन है। जिस प्रकार कुसङ्ग से सर्वनाश होता है, उसी तरह गन्दी पुस्तकें पढ़ने से जीवन नष्ट हो जाता है। गन्दी पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा ज़हर खा लेना अच्छा है। किसी ने कहा है—

"बुरी पुस्तक ऐसा ज़हर है जो जीवन को ही नहीं, आत्मा को भी मार डालता है।" अश्लील पुस्तकों को पढ़ने से और सुनने से सच्चरित्र भी कुछ समय में दुश्चरित्र हो जाता है। इसलिये जिन्हें अपने ब्रह्मचर्य से प्रेम हो, स्वास्थ्य और सदाचार से प्यार हो

उन्हें गन्दी पुस्तकें पढ़ना तो दूर, हाथों से छूना भी नहीं चाहिये। ब्रह्मचर्य प्रेमी को सदा प्रेरणादायक महापुरुषों, जैसे मर्यादा-पुरुषोत्तम राम, श्रीकृष्ण, भीष्म, दयानन्द, रामतीर्थ, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, सुभाषचन्द्र वसु, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आज़ाद आदि को जीवनियां पढ़नी चाहियें।

पतन का पांचवां कारण

आजकल के दूषित सिनेमा हैं। वैसे सिनेमा स्वयं अपने आप में कोई बुराई नहीं है। यह तो विज्ञान की एक बहुत सुन्दर देन है। इसके द्वारा ब्रह्मचर्य शिक्षा तथा देशभक्ति का प्रचार किया जाये तो देश का उद्धार बहुत शीघ्र हो सकता है। यह प्रचार का उत्तम साधन है। किन्तु आजकल जो गन्दे सिनेमा प्रचलित हैं, उन्होंने तो देश के युवकों का सर्वनाश कर दिया है। असंख्य बालकों के चरित्रधन को इन सिनेमाघरों ने स्वाहा कर दिया है। जो गन्दो आदतें बालक बड़े होकर भी नहीं सोख सकते थे, उनको आज सिनेमा के कारण बचपन में ही सीख लेते हैं। सिनेमा के द्वारा भारत के युवकों को भ्रष्ट करने की चाल अंग्रेज़ों की है। इनमें अश्लीलता से भरी हुई देशी-विदेशी असभ्य फ़िल्में दिखाई जाती हैं। उनके अपने देश में भारत की इन गन्दी फ़िल्मों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। भारतीय उनका अन्धा अनुकरण करते हैं। भारत से चरित्र का सर्वथा बीजनाश करने के लिए अंग्रेज़ तुले हुये हैं। उनका राज्य तो गया, किन्तु उनके सहस्रों प्रतिनिधि हिप्पियों के रूप में भारत भ्रमण के बहाने यहां के युवकों को भ्रष्टाचारी बनाने के लिए आते रहते हैं, इनसे सावधान रहना चाहिए। प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य है कि वह अंग्रेज़ों के इन चरित्रहीन दूत हिप्पियों को भारत की पवित्र भूमि से खदेड़ दे।

इसी प्रकार चरित्रभ्रष्टता के लिए एक श्रेष्ठ वैज्ञानिक चमत्कार टेलीविज़न (दूरदर्शन) का भी दुरुपयोग किया जा रहा है।

अतः प्यारे बालको ! इस मीठे ज़हर से बचो और इनको बदलवाने के लिए प्रबल क्रान्ति करके देश के भविष्य को बिगड़ने से बचाओ।

पतन का छठा कारण

उपर्युक्त कारणों के साथ-साथ बालक के अपने गन्दे विचार भी पतन में मुख्य कारण होते हैं। ये अच्छे और बुरे विचार भी इनको अच्छी बुरी पुस्तकों और उनके साथियों से ही मिला करते हैं। बालक के बनने और बिगड़ने का कारण उसके ये अच्छे-बुरे विचार ही हुआ करते हैं। विचार ही मनुष्य को नीच से ऊंच बनाते हैं और विचार ही पतित किया करते हैं। अतः विचारों में पवित्रता रखना आवश्यक है।

जिन बालकों का कोई उद्देश्य नहीं होता, जो सदा इधर से उधर गप्पें मारते फिरा करते हैं या जिन्हें अपने जीवन की कोई चिन्ता नहीं होती, वे ही सदा कामुक विचारों के शिकार हुआ करते हैं, उनके दिमाग़ में हमेशा उल्टो-उल्टी ही कल्पनायें उपजा करती हैं और वे अपने सर्वनाश की तैयारी अपने हाथों किया करते हैं। उनके कोमल शरीर कामाग्नि से तपा करते हैं, उनका मन भी इन कुवासनाओं के कारण सदा गन्दी बातें ही सोचा करता है। कामवासना के मारे वे अंधे हो जाते हैं। ऐसे विनाशक समय में ही वे भोले बालक जब अपने को अकेला पाते हैं, तब तामसिक व क्षणिक केवल नामधारी आनन्द के लिए हस्तमैथुन आदि अनेक आत्मघाती और पैशाचिक कुकर्मों में फंस जाते हैं। आज देश का कोई ही सौभाग्यशाली बालक होगा, जो इस पाप से अछूता हो। आजकल बालकों में यह रोग भीषण रूप से फैला हुआ है। यह

भयङ्कर रोग बालकों को जान से मार रहा है। यह राक्षस कोमल बालकों को बड़ी क्रूरता से निचोड़ डालता है। जो अभागा इस राक्षस के सामने एक बार भी झुक जाता है, वह सदा के लिए इसका दास बन जाता है। यदि वह अपने को इससे रोकना भी चाहे, तो भी नहीं रोक सकता। क्योंकि उसका मन इतना कमज़ोर हो जाता है कि वह चाहते हुये भी अपने को काबू में नहीं कर सकता। गिरने के अवसर सामने आते ही उसकी सभी प्रतिज्ञायें ताक पर धरी रह जाती हैं। ऐसे बालक की दशा मरे हुये से भी भयङ्कर हो जाती है। यह क्रूर आदत अपने शिकार को शक्ति-हीन बनाकर रोने-धोने के लिए छोड़ देती है। हस्तमैथुन से शरीर को बड़ा भयंकर धक्का लगता है, जिससे शरीर की सब नस-नाड़ियां कांप उठती हैं, दिमाग़ के सारे स्नायु हिल जाते हैं। जिस समय यह कुकृत्य किया जाता है, उस समय सारा शरीर दूध की तरह मथा जाता है और फिर दूध में से जैसे मक्खन अलग होता है, उसी प्रकार सारे खून से वीर्य अलग हो जाता है। वीर्य के पृथक् होते ही दिमाग़ पर एक भयंकर चोट लगती है, मस्तिष्क के सर्वोत्तम रस का नाश हो जाता है, जिससे सिर एकदम खाली हो जाता है। जो बालक इस कुकृत्य को करता है, उसका शरीर दुर्बल और रोगी बन जाता है, उसकी स्मरणशक्ति समाप्त हो जाती है। वह जो कुछ याद करता है, वह याद नहीं होता और यदि याद हो भी गया तो शीघ्र ही भूल जाता है। हस्तमैथुन से आँखों पर एकदम असर पड़ता है, आंखों से दीखना कम हो जाता है। सदा सिर, छाती और कमर में पीड़ा रहने लगती है, इसके साथ साथ अनेक धातुसम्बन्धी रोग भी उसके शरीर को आ घेरते हैं।

इसलिये प्यारे बालको! इस भयङ्कर कुटेव से बचो। अपने

हाथों अपनी चिता तैयार न करो। इसके द्वारा जो निकृष्ट आनन्द तुम प्राप्त करना चाहते हो, यह आनन्द नहीं है। अरे बालक! आनन्द तो कोई और ही चीज़ है, इसको जो तू आनन्द समझता है यह तेरी भयङ्कर भूल है। यह तो उस कुत्ते वाला आनन्द है जिस प्रकार मूर्ख कुत्ता सूखी हुई हड्डी को चबाता है, तो उसके मसूढे फूट जाते हैं और उनसे खून निकलने लगता है, वह पागल कुत्ता उस अपने ही खून को हड्डी से निकला हुआ समझकर, उसे चूस-चूस कर बड़ा प्रसन्न होता है, आनन्द अनुभव करता है किन्तु उस बेचारे को क्या पता कि यह खून तेरे ही मुंह से निकल रहा है, तेरे ही मसूढे फूट रहे है। इसलिए बालको! यदि तुमने अपने ही नाश को आनन्द माना तो उस कुत्ते की तरह पछताओगे, जो हड्डी को छोड़ने के बाद मसूढों की भयङ्कर पीड़ा से रोया करता है। अतः सम्भलो अपने जीवनरस वीर्य का नाश न करो। यह इसलिए नहीं उत्पन्न होता है कि इसे यों ही बर्बाद कर दिया जाये। यह तो इसीलिए उत्पन्न होता हे कि इसके द्वारा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति की जाये। यह तो जीवन संजीवनी है, जो इसका पान करेगा, उसका कायाकल्प हो जायेगा और जो जीवन के इस तत्त्व के नष्ट होने पर पुनः रक्त मज्जा आदि अन्य धातुयें भी शरीर से निकलने लग जाती हैं। जिससे शरीर सूखकर कांटा बन जाता है अन्त में तड़प तड़प कर प्राण छोड़ने पड़ते हैं। यदि यत्न से इसकी रक्षा करके इसे अपनी उन्नति में लगाया जाये तो यह सारे शरीर को इस प्रकार तेजस्वी बना देगा, जिस प्रकार दीपक में बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़ता हुआ तेल, अधिक अधिक प्रकाश से भवन को प्रकाशित करता रहता है। यह सुरक्षित वीर्य अपने तेज द्वारा शरीर में इतना प्रकाश कर देता है कि संसार उसे देखकर चकित रह जाता है।

जो इस शरीर के सार वीर्य को नष्ट करता है उसे धिक्कारते हुये महर्षि दयानन्द ने बड़े कठोर शब्दों में भर्त्सना की है—

"१६ वर्ष की आयु से पूर्व कन्या और २५ वर्ष से पूर्व की आयु का जो लड़का वीर्यादि धातुओं का नाश करेगा, वह कुल्हाड़े से काटे वृक्ष और डण्डे से फूटे घड़े के समान अपने सर्वस्व का नाश करके पश्चात्ताप करेगा। पुनः उसके हाथ में सुधार कुछ भी नहीं रहेगा" "जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता, वह नपुंसक, महाकुलक्षणी होता है और जिसको प्रमेह रोग होता है, वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि और उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रम आदि गुणों से रहित हो जाता है।"

अतः प्यारे विद्यार्थियो! अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर इस अपने शरीर के राजा और शक्ति के भण्डार वीर्य की रक्षा मन, वचन, कर्म से करो। कभी भी मन में कोई गन्दा विचार न आने दो, कभी खाली न रहो, सदा कुछ न कुछ करते रहो, क्योंकि खाली मन शैतान का घर होता है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" इसलिये मन को सदा पवित्र रखो। इस पर सदा पहरा लगाये रहो। इसे कभी अवकाश मत दो, सदा काम में लगाये रखो। यदि तुमने किंचिद् भूल की, इसको काम नहीं बताया, तो यह उल्टा तुम्हारा ही नाश कर देगा। इसका तो कुछ न कुछ करने का स्वभाव है अच्छा या बुरा। यह मन तो तुझ रथी आत्मा को पतित करनेवाली इन्द्रिय रूपी घोड़ों की लगाम है। इस लगाम को ढीला करके घोड़ों को स्वतन्त्रता से न विचारने दो, नहीं तो यह शरीररथ विषयवासना के गहरे गड्ढों और खाइयों में गिरकर चकनाचूर हो जायेगा।

कई बालक सोचा करते हैं कि एक—केवल एक बार वीर्यनाश करने से क्या हानि होगी, वह तो नहीं के बराबर ही है।

किन्तु उन भोलों को पता होना चाहिये कि एक बार—केवल एक बार समुद्री जहाज़ में छिद्र करने से सारा जहाज़ सब यात्रियों सहित समुद्रतल में डूब जाता है, एक बार—केवल एक बार अग्नि लगने से सारे भवन को भस्मसात् कर देता है, इसी प्रकार यह एक बार का किया वीर्यनाश भी आगे चलकर भयंकर रूप धारण कर लेगा और इस जीवन नौका को डुबा देगा। इस भवन को अग्नि की भांति भस्मसात् कर देगा। यह 'एक बार' केवल एक बार नहीं है, यह अनेक बार का मूल है, बीज रूप है। जब वह 'एक बार' से स्वयं को नहीं रोक सकता, तो अनेक बार से कैसे रोक सकेगा? अतः प्रिय छात्रो! इस भयंकर कुटेव को एक बार भी करने के विचार को सर्वथा त्याग दो। यदि 'एक बार' के चक्कर में फंस गये तो यह भी एक बार आपको मौत के मुंह में धकेल देगी।

वीर्य नाश से हानि क्यों ?

यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है कि वीर्य शरीर का प्रधान तत्त्व है, इसी को तेज, उत्साह, बल, शौर्य आदि नामों से पुकारा जाता है। वीर्य ही शक्ति का भण्डार और शक्ति का अजस्र स्रोत है। यही शरीर रूपी दीपक का तैल है, शरीर में वीर्य का वह महत्त्व है जो दूध में मक्खन और गन्ने में रस का होता है।

यह वीर्य बालक की ११-१२ वर्ष की आयु में प्रकट होता है। वैसे इससे पहले भी यह शरीर में होता है, क्योंकि इसके बिना तो शरीर स्थिर ही नहीं रह सकता। किन्तु वह उस समय प्रकट नहीं होता, इसी अवस्था में आकर प्रकट होता है। यही कारण है कि जब बालक ११-१२ वर्ष के होते हैं, तब अपने आप ही उनके शरीर का सौन्दर्य और कान्ति बढने लगती है। उस समय बालकों का

उत्साह पहले की अपेक्षा दूना हो जाता है। अंग-प्रत्यंग में शक्ति का संचार और आंखों में एक विशेष प्रकार की चमक उत्पन्न हो जाती है। इस सबका कारण, वह प्रकट हुआ वीर्य ही है, इसी से सारा शरीर लहलहा उठता है।

प्रतिदिन जो भोजन किया जाता है उसका रस, रक्त आदि क्रम से छहों धातुओं के पश्चात् वीर्य बनता है। बनने के बाद यह वीर्य दो धाराओं में बंट जाता है। उन धाराओं का नाम हैं—अन्तःस्राव और बहिःस्राव। अन्दर बहने वाले को अन्तःस्राव और बाहर बहने वाले को बहिस्राव कहते हैं। ये दोनों ही स्राव बालकों के शारीरिक परिवर्तन के कारण हुआ करते हैं। वैसे अन्तःस्राव तो बचपन से ही होता रहता है और यह खून में मिलकर शरीर को बनाता है। बहिःस्राव बड़ी आयु में आरम्भ होता है। वीर्य बनने के बाद दोनों धाराओं द्वारा यथास्थान पहुँचता रहता है। अन्तःस्राव से बहनेवाला वीर्य रुधिर के साथ मिलकर शरीर में ओज के रूप में रमता रहता है और मस्तिष्क तथा शरीर को अपूर्व शक्ति प्रदान करता है। इसी अन्तःस्राव के कारण शरीर में तेज और कान्ति प्रकट होती है तथा उत्तरोत्तर शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की वृद्धि होकर मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्ति का विकास होता है।

बहिस्राव से वीर्य धीरे-धीरे अत्यन्त थोड़ी मात्रा में वीर्याशय में सञ्चित होने लगता है और कुछ समय में वीर्यकोश वीर्य से भर जाता है। वीर्यकोश के भरने के बाद बहिःस्राव सर्वथा बन्द हो जाता है और वह उत्पन्न हुआ वीर्य अन्तःस्राव में बहने लगता है। इस प्रकार वीर्याशय के भर जाने से बहिःस्राव का भी सारा वीर्य शरीर को पुष्ट करने में लग जाता है, जिससे शारीरिक, मानसिक आत्मिक उन्नति में वृद्धि होकर, शरीर कान्ति से चमक

उठता है, मस्तिष्क अपना चमत्कार दिखाने लगता है। मुखाकृति में भी सौन्दर्य की अद्‌भुत छटा खिल उठती है। इसी अन्तःस्राव की चमक योगियों और महात्माओं के चेहरों पर देखने में आया करती है। यदि यह अन्तःस्राव यूं ही बहता रहे और बहिःस्राव बन्द पड़ा रहे, तो मनुष्य के भीतर अपूर्व शक्ति का संचार हो जाता है। ऐसा सौभाग्यशाली अपने जीवन को आनन्द और मस्ती के साथ बिताता है। उसका फूल सा खिला हुआ चेहरा और मचलती हुई चाल सब दर्शकों का मन हर लेती है। यह अन्तःस्राव ही शरीर का असली भोजन है। किन्तु जो अपनी इन्द्रियों के पीछे चलकर कुचेष्टायें करते हैं, या गन्दी गन्दी बातें विचारते रहते हैं, उनका वीर्याशयगत वीर्य दिन में या रात को सोते समय शरीर से बाहर हो जाता है और वह भरा हुआ शुक्र-कोश खाली हो जाता है। जिस प्रकार एक गड्ढे में से एक घड़ा जल निकाल लेने पर चारों ओर का जल, निकले हुये पानी की पूर्ति के लिए पूर्ण वेग से आता है, और जल के ऐसे ही निकालते रहने से वह बिलकुल खाली हो जाता है, इसी प्रकार वीर्य नाश से शुक्रकोश के रिक्त होते ही उसको पुनः भरने के लिए वीर्यवाहिनी नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में फैला हुआ वीर्य खिचकर वीर्याशय में इकट्ठा हो जाता है। इस प्रकार के क्रम से अन्तःस्राव द्वारा खून में जानेवाले वीर्य की मात्रा न्यून हो जाती है, जिससे शारीरिक शक्ति का ह्रास आरम्भ हो जाता है, मुख की कान्ति मलिन पड़ जाती है, साहस और उत्साह धीमे पड़ जाते हैं। आरम्भ-आरम्भ में वीर्यनाश से हानि प्रतीत नहीं होती, क्योंकि उस समय तक शरीर में पहले से शक्ति सञ्चित हुई रहती है, इस कारण भोला बालक यह समझ बैठता है कि मुझे कोई हानि नहीं हुई। परन्तु उसे याद रखना चाहिये, वीर्य की एक बून्द भी नष्ट करना अपने

आप को मृत्यु के मुख में धकेलना है। किसी के पास धन चाहे कितना ही हो, यदि उसकी चोरी होनें लग जाये, तो एक न एक दिन वह धनी व्यक्ति कङ्गाल होके रहेगा।

जो वालक सदा गन्दे और चरित्रहीन साथियों में उठते बैठते हैं या जो गन्दी पुस्तक पढते रहते हैं, वे सदा मलिन विचारों में डूबे रहते हैं, इससे उनके शरीर में कामोत्तेजना बढ जाती है। इस उत्तेजना के कारण वे मूर्ख बालक अनेक कुचेष्टाओं द्वारा अपना वीर्यपात करते रहते हैं। उनके इस प्रकार करते रहने से उनका वीर्यकोश बार-बार खाली होने लगता है, इससे उत्पन्न हुआ सारा वीर्य इस खाली कोश को ही भरने में खपता रहता है और अन्तः-स्राव सर्वथा वन्द हो जाता है। ऐसे अभागों का वीर्यकोश दिन में न जाने कितनी बार खाली होता और भरता है। इस प्रकार वीर्यकोश के बार-बार खाली होने और भरने से शरीर का सम्पूर्ण वीर्य यहीं खप जाता है, जिससे खून को वीर्य नहीं मिल पाता। वीर्यहीन रक्त से शरीर भी अधिक दिन नहीं ठहरता और वह भी धीरे धीरे ह्रास को प्राप्त होने लगता है। शरीर पीला पड़ जाता है, कान्ति जाती रहतो है। मस्तिष्क भी काम करने में असमर्थ हो जाता है। अन्त में अवस्था यह हो जाती है कि शरीर में वीर्य बनना ही बन्द हो जाता है, क्योंकि सशक्त रक्त के विना शरीर भी वीर्य बनाने में असमर्थ हो जाता है; अतः उसे भी ओजयुक्त खून चाहिये। जब वीर्य ही नहीं बना, तो शरीर कैसे स्थिर रह सकता है, जब राजा ही समाप्त होगया, तब प्रजा का नाश तो अवश्यम्भावी है। ऐसे वीर्यहोन पतित का जीवन भूमि पर भार रूप ही होता है। उसकी आंखों में ज्योति नहीं रहती और वे अन्दर धंस जाती हैं, सिर में दर्द बना रहता है। बाल सफेद हो जाते हैं, चेहरा मुरझा जाता है, छाती की हड्डियां दीखने लगती हैं, पसलियां

अन्दर को झुक जाती हैं। पेट खराब होने से कभी कब्ज़ रहती है, तो कभी दस्त लग जाते हैं। हृदय की धड़कन बढ जाती है, फेफड़े खराब हो जाते हैं। थोड़ी सी सर्दी में ही हाथ पैरों की अंगुलियां ठण्डी होकर नीली पड़ जाती हैं, क्योंकि हृदय के कमजोर हो जाने से खून का सञ्चार दूर तक नहीं हो पाता। शरीर के जोड़ों में सदा दर्द बना रहता है। अधिक क्या, वह जब तक जीता है, तब तक दुनियां के जितने रोग हो सकते हैं, वे सब उसे घेरे रहते हैं और अन्त में ऐसा पतित व्यक्ति सड़ सड़ कर मरता है।

इसलिए प्यारे बालको! ध्यान दो इस बात पर। कभी भी कोई ऐसी चेष्टा न करो जिससे तुम्हें पीछे पछताना पड़े। यही समय तुम्हारा बढने का है। यही तो समय है, जिसमें शरीर सम्पत्ति वढाई जातो है। उस व्यक्ति को लानत है, धिक्कार है, जो थोड़ी सी शारीरिक सम्पत्ति की गर्मी में अपने को भुलाकर व्यर्थ व्यय में फंस जाता है। उसे चाहिये कि इस जीवनदायिनी ऊष्मा की बहुत यत्न से रक्षा करे। यदि इस समय चूक गया, तो फिर सम्भलने का अवसर नहीं मिलेगा। यह मनुष्य जन्म और इसमें भी यह बचपन बड़ा दुर्लभ है। अतः भाइयो! औरों पर नहीं, तो कम से कम अपने ऊपर तो दया करो, अपने ही हाथों अपना सर्वनाश न करो। नहीं तो फिर पछताने के सिवाय कोई मार्ग नहीं रहेगा। एक बार यदि तुम पतित हो गये तो पहली स्थिति को नहीं प्राप्त कर सकते। अरे सुनो! कान खोलकर ध्यान से सुनो! तुम्हें महात्मा गान्धी सावधान करते हुये अपने जीवन के अनुभव सुना रहे हैं, वह कह रहे हैं—

१. "बहुत समय से बन्धी हुई तन, मन धन की दृढ़ता को एक वार के वीर्यपात से भी ऐसी हानि पहुंचती है कि उसे पूरा करने के लिए बहुत समय चाहिये। परन्तु फिर भी असली स्थिति

आ ही नहीं सकती। फूटे हुये प्याले को जोड़कर काम लिया जा सकता है, किन्तु वह रहेगा फूटा ही।

२. थोड़े समय तक भी जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, वे देखेंगे कि उनके शारीरिक और मानसिक बल में कितनी उन्नति हुई है। एक बार यह पारसमणि हाथ में आगया कि लोग जी जान से रक्षा करेंगे। यदि जरा भी वे चूकेंगे तो तुरन्त कहेंगे कि हमने बड़ी भारी भूल कर डाली। मैंने तो ब्रह्मचर्य के अगणित लाभ समझने के बाद भी भूलें की हैं और उनके कड़वे फल भी भोगे हैं। दुःख है कि कहां तो भूल के पहले की वह भव्य दशा और कहां भूल के बाद मेरी एक भिखारी जैसी स्थिति। मेरे सामने मेरी इस दशा का चित्र-सा खिच जाया करता है, परन्तु मैंने अपनी भूलों से इस मणि (ब्रह्मचर्य) की कदर करना सीखा है। ब्रह्मचर्य से मेरे शरीर और मन को जो लाभ हुये हैं, उन्हें मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूं।

३. लगभग बीस वर्ष तक विषयों में फंसे रहकर जगने के बाद मैं जिस दशा को प्राप्त कर सका हूं, यदि इन बीस वर्षों को भी मैं बचा सकता तो कितना अच्छा होता।"

—महात्मा गांधी

अतः प्रिय विद्यार्थियो! कम से कम दूसरों को देखकर ही अपने आपको मार्ग के नुकीले पत्थरों की भयंकर चोटों से बचा लो। दूसरों को ज़हर खाकर मरते देखकर ही अपने को इस विषय विष से बचाये रखो। भाइयो! अभी कुछ नहीं बिगड़ा है यदि सम्भल जाओगे, तो सारे जीवन सुख पाओगे। यह वीर्य ही सर्वस्व है, अतः इस वीर्य की रक्षा करो। इसकी एक बून्द भी बेकार न जाने दो, इसे व्यायाम, प्राणायाम द्वारा शरीर में रमा दो। यह वीर्य मस्तिष्क को पुष्ट करने का अद्भुत रस है। जो

इसका पालन जितना अधिक करता है, उसका मस्तिष्क उतना ही तेज होता चला जाता है और वह दुनियां को अपने परिपुष्ट मस्तिष्क से विशेष देन दिया करता है।

वीर्य और मस्तिष्क का तो तेल दीपक का सम्बन्ध है, जिस प्रकार तेल समाप्त होते ही दीपक बुझ जाता है, ठीक उसी प्रकार वीर्य के अभाव में मस्तिष्क भी शान्त हो जाता है। यही कारण है जो पागल होते हैं उनमें प्रायः वीर्य नष्ट करनेवाले ही अधिक पाये जाते हैं। वीर्यनाश से ज्ञानतन्तुओं और शरीर को ऐसा भयङ्कर धक्का लगता है कि कई बार तो पापनिमग्न व्यक्ति वहीं बेहोश हो जाते हैं या सदा के लिए वे ढेर हो जाते हैं। हम नीचे कुछ उद्धरण देते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि वीर्य और मस्तिष्क का घनिष्ठ सम्बन्ध है—

सेर्स एक नवयुवक के विषय में लिखता है—"जो वीर्यनाश के कारण ही अकाल में काल का ग्रास बना। मृत्यु के पश्चात् जब उसका शव चीरा गया तो उसके छोटे मस्तिष्क के मध्यखण्ड में सूजन के चिह्न दिखाई दिये, मस्तिष्क तत्त्व कई जगहों से फटा हुआ मिला और दिमाग के अन्दर की कई थैलियों में खून भरा हुआ पाया गया।"

इसी प्रकार एक और विषयी का मस्तिष्क चीर कर देखा तो उसके भी मस्तिष्क में खून इकट्ठा पाया।

डा. गियोन ने भी एक कामी व्यक्ति का वर्णन करते हुये लिखा है—उसके मस्तिक में रक्त संचय के आक्रमण कई बार हुये, उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट था इसलिए कुछ दिनों तक तो वह सब सहन करता रहा, परन्तु अन्त में पागल होगया, उसका रोग जल्दी जल्दी बढने लगा, नीचे के भाग में अर्धाङ्ग होगया और १२ घण्टे में ही वह बेचारा चल बसा।

इसी लेखक ने एक बीस साल के कामान्ध युवक का उल्लेख किया है। वह बचपन से ही वीर्यनाशक कुचेष्टायें किया करता था, कुछ ही दिनों में मृगी का दौरा हो जाता था। किन्तु वह नहीं सम्हला, परिणाम स्वरूप तीन महीने के बाद वह बिल्कुल सूखकर मर गया। चीरने पर उसके मस्तिष्क में एक गाँठ पाई गई।

ऐसे ही एक और का मतिष्क चीर कर देखा गया तो ऊपर वाला भाग तो सारे का सारा संड़ाद से भरा हुआ था और बाकी भाग भी कुछ-कुछ गल सा गया था।

ये हैं वीर्यनाश के भयङ्कर दुष्परिणाम। इसी प्रकार और भी न जाने कितने उदाहरण मिलते हैं जो वीर्यनाश के कारण सड़ सड़कर मृत्यु के ग्रास बने और उनका शवच्छेदन किया तो सबके मस्तिष्क विकृत मिले।

जो बालक सदा कुचेष्टायें करते हैं उनका तो सर्वनाश होता ही है, किन्तु बहुत से बालक वचन और कर्म से तो बचे रहते हैं और मन से सदा गन्दी गन्दी कल्पनायें किया करते हैं, वे समझते हैं कि हमें हानि क्यों होगी क्योंकि हम कोई कर्म तो ऐसा करते नहीं, परन्तु उन भोले बालकों को यह समझ लेना चाहिये कि वे कितनी भयंकर भूल कर रहे हैं। जो भी विचारों को गन्दा रखता है, उसका सबसे पहले तो खून खराब होता है, जो उसके कुविचारों के कारण उत्तेजना उत्पन्न करने में काम आया। क्योंकि वह खून कुछ देर तक मूत्रेन्द्रिय में ठहरने के बाद जीवनरहित हो जाता है, निष्प्राण हो जाता है। उत्तेजना समाप्त होते ही यह विकृत खून पुनः शरीर में चला जाता है, और शरीर के सारे खून को भी अपनी विकृति से विकृत कर देता है। इस खून खराबी के साथ-साथ गन्दे विचारों की गर्मी से मस्तिष्क पसीजने लगता है

उसकी जीवन धारा सूख जाती है और थोड़े दिनों में वह काम करने से इन्कार कर देता है। जिससे पागलपन या मृगी जैसे रोग उसे पारितोषिक में मिला करते हैं। इसलिये जो वीर्य नाश करता है समझो वह अपने मस्तिष्क को पिंघाल रहा होता है। वीर्य ही मस्तिष्क का भोजन है, वीर्य ही इसका इन्धन है, इसी के कारण मस्तिष्क प्रकाशित होता है। जो इस इन्धन की रक्षा करेगा उत्तरोत्तर उसकी विचार शक्ति बड़ी उज्ज्वल और तीव्रतर होती चली जायेगी। वीर्य की एक एक बून्द मस्तिष्क के प्राण हैं। एक बार के वीर्यपात से भो मस्तिष्क को काफी क्षति पहुंचती है। यूनान देश के प्रसिद्ध महात्मा अफलातून के जीवन की एक घटना से भी इस बात की पुष्टि होती है। घटना इस प्रकार है—

महात्मा अफलातून के यहां जब एक पुत्र उत्पन्न हो गया तो उसके पश्चात् उन्होंने गृहस्थ नियम का परित्याग कर दिया था। जब बालक बारह वर्ष का हो गया तब बालक की माता ने अपने पुत्र को समझाया कि तुम अपने पिता से जाकर कहो कि पिता जी! यदि मेरा एक भाई और होता तो बड़ी खुशी की बात होती, हम दोनों भाई मिलकर बड़े-बड़े अपूर्व कार्य करते, आप दोनों के नाम को संसार में चमकाकर स्वयं यश के भागी बनते और संसार का उपकार करते, क्योंकि जब दो मन एक हो जाते हैं तो पर्वत को भी तोड़ देते हैं, ऐसी लोकोक्तियां हैं। महात्मा अफलातून अपने पुत्र की इस युक्तियुक्त बात को सुनकर हंसे और भाव को ठीक समझकर उसे गोद में लेकर उत्तर दिया—

"मेरे पुत्र! जाकर अपनी माता को कह दो कि मैं जानता हूं कि एक बच्चे के उत्पन्न करने में मेरी कितनी शक्ति का ह्रास हो गया है और मेरे मस्तिष्क में विचारशक्ति की कितनी न्यूनता

हो गई है। यदि मैं इस एक को भी उत्पन्न न करता तो मैं सूर्य आदि लोकों में इस शरीर से जब चाहता भ्रमण कर आता। इस की कमी से अब मैं विचार तो सकता हूं किन्तु जा नहीं सकता, परमेश्वर को ठीक-ठीक जनता तो हूं परन्तु अब साक्षात्कार नहीं कर सकता। मैं लोकोपकार के कार्यों को जितना करना चाहता था उतना अब नहीं कर सकता, बस अपनी माता से कह दो कि मैं इससे आगे इस (सन्तान उत्पत्ति) के मार्ग में नहीं चल सकता।"

हो सकता है इसमें कुछ अत्युक्ति हो. परन्तु फिर भी यह घटना वीर्यरक्षा के महत्त्व को दर्शा रही है। उस महात्मा के हृदय में ब्रह्मचर्य का महत्त्व कूट-कूट कर भरा हुआ था, ब्रह्मचर्य के गुणों को वह जान चुका था, इसके प्रति उसके हृदय में तड़प थी, उत्कट लगन थी। तभी तो वह एक बार के वीर्यपात से ही इतना पश्चात्ताप कर रहा था। आजकल के विषयों के दास कामान्ध पुरुषों के लिए कितना उच्च आदर्श रखा है उस महात्मा ने।

अतः प्रिय विद्यार्थियो! दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाओ। यह समय है सम्भलने का। तुम्हारा अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, अतः अभी से मन में यह दृढ़ निश्चय कर लो कि हम अपने को पतित नहीं होने देंगे और जीवनाधार वीर्य की रक्षा प्राणार्पण से करेंगे, स्वयं समाप्त हो जायेंगे परन्तु वीर्य को सुरक्षित रखेंगे।

संसार में वस्तु मात्र का मूल्यांकन हो सकता है किन्तु वीर्य का नहीं। संसार की अन्य वस्तुयें खोजायें तो प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु वीर्य की एक बून्द भी नष्ट होने पर वह पुनः नहीं प्राप्त हो सकती। प्यारे बालको! जिसने वीर्य की रक्षा की है उसका मस्तिष्क सदा उद्दीप्त रहता है, उसका मुख-मण्डल सदा फूलसा खिला रहता है। शरीर में शक्ति और स्फूर्ति का सञ्चार

रहता है। संसार का कोई भी कार्य उसके लिए कठिन नहीं होता। वह शक्ति के स्रोत वीर्य के अद्भुत प्रताप से संसार को मनचाही दिशा में घुमा सकता है। संसार उसके इशारों पर नाचा करता है। अत: यदि तुमने संसार में आकर कुछ विशेष काम करना है, जीवन सुखी बनाना है और मनुष्य जीवन सार्थक करना है तो इस शक्ति के भण्डार वीर्य की रक्षा करो, यही कर्त्तव्य कर्म है और यही सब सुधारों का सुधार है। इसी में संसार का और तुम्हारा भला है।

माता-पिता-गुरुओं से

अब तक हमने बालकों को पतित होने से बचने के लिए कहा। उनको ब्रह्मचर्य की महिमा और ब्रह्मचर्य से होने वाली दुर्दशा का भी खुले शब्दों में परिचय कराया। अब हम उनके माता-पिता एवं गुरुजनों को भी बालकों को बचाने के लिए चेतावनी देना उचित समझते हैं।

प्रत्येक माता-पिता तथा गुरुओं का आवश्यक एवं प्रधान कर्त्तव्य है कि वह अपनी सन्तान व शिष्यों को बुराइयों से बचाकर सर्वगुण सम्पन्न बनायें, किन्तु आजकल के नामधारी माता-पिता व गुरुजन अपने सन्तानों की तरफ किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहीं देते। उनकी ओर से वे बनें या बिगड़ें। इस तरफ से वे सदा उदासीन रहते हैं किन्तु उन भोले लोगों को पता नहीं कि तुम्हारी इस उदासीनता एवं उपेक्षा से तुम्हारे उन सुकोमल बालकों का उज्ज्वल भविष्य खतरे में पड़ जाता है। जो बालक महामनस्वी होते, जो उदात्त विचारक बनते व संसार को मार्ग दर्शाते वे मानव समाज के उदीयमान भावी नेता जीवन के प्रथम (प्रारम्भिक) क्षणों में ही विषयों की ज्वालामुखी में झुलस कर मृतप्राय: हो जाते हैं। उनका

उल्लास-पूर्ण मस्ताना जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है व उनकी जीवनदायिनी शक्ति का ह्रास हो जाता है। मानव समाज को अमूल्य देन देने की क्षमता रखने वाली प्रस्फुटित मेधा शक्ति पिंघल कर पानी की भाँति बून्द बून्द टपक कर धूल में मिल जाती है। जब उन भोले बालकों को आखें खुलती हैं तब वे अपनी इस दयनीय अवस्था को देखकर दहाड़ मार मार कर रोते हैं। अब उनके लिए माता पिता को कोसना व पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसते रहना मात्र हो शेष रह जाता है। किन्तु "फिर पछताये क्या होत जब चिड़ियां चुग गईं खेत।"

इसलिए ऐ मेरे देश के भावी कर्णधारों के निर्माताओ! मैं आपको सावधान करना चाहता हूँ कि अपनी सन्तान! नहीं नहीं, राष्ट्र की धरोहर को जिसे राष्ट्र ने बनाने, संवारने और बढ़ाने के लिए आपको नियुक्त किया है, उस उत्तरदायित्व को आप सम्पूर्ण शक्ति लगाकर निभाइये। यह सन्तान केवल आपकी ही नहीं है, इसपर केवल आपका ही अधिकार नहीं हैं, अपितु यह तो राष्ट्र की वह अमूल्य सम्पत्ति है, जो आगे चलकर देश को सम्भालेगी। यदि आपने इस दायित्वपूर्ण कार्य में सावधानी नहीं वर्त्ती, तो यह आपकी देश के साथ गद्दारी होगी, देश-द्रोह होगा।

इसलिए आप माता-पिता गुरु जो अपने राष्ट्र के आधार स्तम्भ व भावी सन्तति के निर्माता हैं, को यह चाहिए कि अपनी सन्तान को सभी प्रकार की कुचेष्टाओं से बचाये रक्खें। उनके सामने बुराइयों में फंसने का भयंकर परिणाम तथा ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ नियमों के पालन का गुणगान स्पष्ट शब्दों में उत्तम रीति से वर्णन कर दें। इससे आपके बच्चे बुराइयों से बचे रहेंगे। इस कर्त्तव्यपरायणता को कभी न भूलना चाहिए तथा बिना

संकोच व लज्जा के उनके समक्ष लाभ की सभी बातों को प्रकट कर देना चाहिए नहीं तो निरर्थक संकोच लज्जादि आपकी सन्तान की मौत का कारण बनेगीं व आपके हाथ में भी पछतावे के अतिरिक्त कुछ शेष न रहेगा। उनके विनाश को देखकर आप भी रोये बिना क्योंकर रह सकेंगे ?

कुछ व्यक्तियों का ऐसा विचार है कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए यदि ब्रह्मचर्यघातक चेष्टाओं का परिणाम एवं उनसे दूर रहने को कहें तो वे जिन बुराइयों को नहीं जानते होंगे उनको भी सीख जावेंगे। परन्तु उन भोले लोगों का यह विचार भयङ्कर घातक सिद्ध होता है। क्योंकि यदि आप पहले ही सावधान न कर देंगे तो वे कुसंग में पड़कर कुचेष्टायें तो सीख ही लेंगे, किन्तु अच्छाई नहीं।

इसलिए भय शंका लज्जा को छोड़कर ब्रह्मचर्य नाशक बुराइयों की तीव्र निन्दा एवं उनसे होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन अवश्य कर दिया करें अथवा यह जीवन पथ दर्शक ग्रन्थ अपने प्रिय बालकों, शिष्यों तथा प्रिय मित्र बन्धुओं के हाथों में रखदें ताकि वे अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझ सकें व जीवनवृत का एक दृष्टिकोण निर्धारित करके अधिक से अधिक अपने भावी जीवन को उत्तरोत्तर सुखमय बनाने हेतु स्वयं को समर्थ पा सकें।

कुछेक निर्देश यहां कर देते हैं जिनका माता-पिता व गुरुजनों को ध्यान रखना चाहिए—

१- सबसे पहली बात तो यह है कि उनको अकेला तथा खाली न छोड़ा जावे।

२- दूसरी यह कि उन्हें बुरे साथियों के साथ न खेलने दिया जावे और न ही उन्हे उनके साथ रहने दिया जावे। यदि कभी

साथ देखें तो तुरन्त धमका एवं कठोर दण्ड देकर आगे के लिए सावधान कर दें।

३- गन्दी पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें तथा चित्र उनके सामने न आने दिये जावें। न ही गन्दे गीत गाने दें। इत्यादि।

इसी प्रकार और भी जो बातें उनके लिए हानिकारक प्रतीत हों उनसे बचाये रक्खें।

वीर्यरक्षा के साधन

वैसे तो वीर्यरक्षा के अनेक साधन हैं परन्तु यहां तो कुछ मुख्य साधनों का ही उल्लेख करेंगे—

१ पवित्र विचार

सारे संसार का व्यापार विचारों पर ही आधारित है। विचारों को शक्ति के अनुसार ही मनुष्य सदा चेष्टा करता रहता है। संसार का कोई भी कार्य बिना विचारों के नहीं होता। अतः इस विचारशक्ति को अपने वश में करना प्रथम कर्त्तव्य है। जिसके जैसे विचार होते हैं वह वैसा ही बन जाता है, विचारों में अद्भुत शक्ति है। मनुष्य के बिगाड़ने और बनाने के कारण उसके विचार ही हुआ करते हैं। अच्छे विचारों का फल अच्छा मिलता है और बुरे विचारों का बुरा। पवित्र विचार उन्नति के साधन हैं और अपवित्र अवन्नति के। वीर्यरक्षा के लिए पवित्र विचारों की अत्यंत आवश्यकता है। जिसके विचार सदा पवित्र रहते हैं वह कभी भी पतित नहीं हो सकता। पतित से पतित व्यक्ति भी यदि उच्च और पवित्र विचार का हो जाये तो वह भी कुछ ही दिनों में उच्च और पवित्रात्मा बन सकता है। अतः जो वीर्य की रक्षा करना चाहता है उसे चाहिये कि वह हठ पूर्वक बुरे विचारों

का विरोध करे और दृढ़ता के साथ पवित्र विचारों का सदा स्वागत करे। इसी में अपना उद्धार समझे और यह निश्चय करले कि मैं सुविचारों को मरते दम तक भी नहीं छोड़ूंगा। जो मनुष्य अपने विचारों को वश में कर लेगा वह वीर्य को भी अपने वश में कर लेगा इसमें कोई संशय नहीं है, क्योंकि—"मन के हारे हार है मन के जीते जीत।"

२—समय पर मलमूत्र त्याग

मल मूत्र के वेगों के धारण से भी वीर्य रक्षा में बाधा पहुँचती है। समय पर मल त्याग न करने से मल का दूषित अंश रक्त में मिलकर कई रोग पैदा कर देता है। समय पर मल त्याग करने से पेट साफ रहता है और भूख खूब लगती है। मल-त्याग दोनों समय प्रातः सांयं अवश्य करें। मल-मूत्र की गर्मी से भी वीर्य का नाश हो जाता है। प्रातः ब्राह्म-मुहूर्त में ही उठकर शौच आदि से निपट लेना चाहिए। यही समय उठने के लिये सर्वोत्तम होता है। सुबह शाम दोनों समय शौच से पहले पानी अवश्य पीना चाहिये। शौच के समय पानी पर्याप्त ले जायें। इसी प्रकार लघुशंका जाते समय भी पानी ले जाना चाहिए। लघुशंका के पश्चात् मूत्रेन्द्रिय को पानी से धो लेना चाहिये। इससे जहां शरीर पवित्र रहता है, वहां मन की चञ्चलता नष्ट होकर गन्दे विचारों का अन्त होता है। क्योंकि शरीर की सब वीर्यवाहिनी नशें मूत्रेन्द्रिय में एकत्रित होती हैं अर्थात् यह उनका केन्द्र है। इसलिए वीर्यरक्षा में अत्यंत सहायक रहस्यपूर्ण इस लुप्त क्रिया को लघुशंका और शौच के समय अवश्य करना चाहिये। ध्यान रहे इस क्रिया को करते समय घर्षण कभी न करें नहीं तो लाभ की अपेक्षा कहीं अधिक हानि उठानी पड़ेगी।

३—प्राणायाम

वीर्यरक्षा के जहां और साधन हैं, वहां प्राणायाम भी एक सर्वोच्च एवं प्रमुख साधन है। क्योंकि मन प्राण और वीर्य इन तीनों का परस्पर अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राण की गति जिस तरफ होगी मन और वीर्य को गति भी उसी तरफ होगी। इसलिए प्राणायाम से प्राणों को वश में किया जाता है। मन के वश में होने से कुविचारों पर भी अधिकार हो जाता है। प्राणायाम से वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। प्राणायाम से शुक्रकोष में पड़ा हुआ वीर्य ऊपर को जाने लगता है, जिस प्रकार दीपक का तैल बत्ती में जाता है या सूर्य के कारण तालाब आदि का पानी वाष्प बन कर ऊपर जाता है।

प्राणायाम का कार्य जहां वीर्यादि धातुओं को स्थिर करके शारीरिक शक्ति बढ़ाना है वहां इन्द्रियों के दोषों का नाश करना भी एक मुख्य कार्य है। प्राणायाम करने से बुद्धि के तमोगुण आदि मल दूर होकर सत्व गुण की प्रधानता हो जाती है, जिसके कारण मन, बुद्धि और आत्मा सब शक्तियों के भण्डार बन जाते हैं। मनु महाराज ने भी प्राणायाम की महत्ता दिखाते हुये कहा है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात्—जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से (सुवर्ण आदि) धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं और वे सु-वर्ण बन जाते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह (प्राणायाम) से मन आदि इन्द्रियों के समस्त दोष भस्मीभूत हो जाते हैं।

मनुष्य का मन अति बलवान् एवं अति चञ्चल है इसे वश में

करना मानो वायु को वश में करना है। यदि यह मन वश में हो जाये तो मनुष्य अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच सकता है। मन अत्यन्त शक्तिशाली तत्त्व है किन्तु जितना यह शक्तिसम्पन्न है उतना ही यह चञ्चल भी है और इसकी यह चञ्चलता ही कार्यसिद्धि में बाधक है, इसकी इस चञ्चलता को समाप्त कर इसे स्थिर करने का मुख्य साधन प्राणायाम है क्योंकि प्राण और मन का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है, प्राण के निरोध से मन का निरोध तथा मन के निरोध से प्राण का निरोध होता है। सारांश यह है कि वीर्य की रक्षा के लिये मन को वश में करना और मन को वश में करने के लिये प्राण को वश में करना अत्यावश्यक है और प्राण को वश में करने का प्राणायाम मुख्य साधन है। प्राणायाम के द्वारा ही हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि ऊर्ध्वरेता हुआ करते थे। संयम और प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से वीर्य की गति सदा के लिये ऊपर की ओर हो जाती है, जिससे धातु सम्बन्धी स्वप्नदोषादि सभी रोग समाप्त हो जाते हैं।

आज कोई ही ऐसा सौभाग्यशाली युवक होगा जो धातु सम्बन्धी महामारी से आक्रान्त न हो। अतः हम यहां स्वप्नदोष आदि रोगनाशक प्राणायामविधि ही दिखाते हैं। यह विधि हम ब्रह्मचर्य के दीवाने, युवकों के प्रेरणास्रोत, प्राणायाममर्मज्ञ, पूज्य स्वामी ओमानन्द जी महाराज के शब्दों में ही बतायेंगे। यह ऐसी विधि है कि जिस के द्वारा न जाने कितनों ने अपने खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त किया है। उसी रहस्यपूर्ण विधि को हम यहां यों का यों उद्धृत करते हैं।

ऊर्ध्वरेता होने की प्राचीन गुप्त विद्या

ऊर्ध्वरेता होने की एक विशेष विद्या थी। जिस से वीर्य की

गति सदा के लिये ऊर्ध्व हो जाती है। उसी विद्या की कुछ झलक व रूपरेखा आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में मिलती है। अनेक वर्ष इस की खोज तथा अनुभव मैं भी करता रहा हूँ। इसका अनुभव मेरे अनेक ब्रह्मचर्यप्रेमी साथियों ने किया व कराया है। जिसने इसका अनुभव किया उसने ही मुक्तकंठ से प्रशंसा की। इस का दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक और निरन्तर सेवन करेगा वह निश्चय पूर्वक ऊर्ध्वरेता हो जायेगा। उसकी इच्छा के बिना वीर्य का एक बिन्दु भी उसके शरीर से बाहर नहीं निकल सकता। उस विधि का कुछ भाग ब्रह्मचर्य प्रेमियों के लाभार्थ नीचे देता हूं।

यह एक प्राणायाम की विधि है। इसके केवल पढ़ने मात्र से कार्य नहीं चलेगा। ब्रह्मचर्य के अन्य नियमों का पालन करते हुए प्राणायाम का प्रतिदिन अभ्यास करना है। आजकल कुसंग तथा कुसंस्कारों के कारण बालक हस्त-मैथुन गुदा-मैथुन आदि कुटेवों (बुरी आदतों) और पापों में फंसकर बार-बार वीर्य का नाश करते हैं। इस से वीर्य की अधोगति होती है और वह बिना इच्छा के भी स्वप्नदोष आदि द्वारा बाहर निकलता रहता है। ऐसे बालक सत्संग व स्वाध्याय से हस्त-मैथुन आदि कुटेवों को छोड़ देते हैं और वीर्य रक्षा के यत्न करते हैं। किन्तु उनकी इच्छा के विरुद्ध स्वप्न-दोष आदि के द्वारा वीर्य निकलता रहता है तो बड़े दुःखी रहते हैं। ऐसे ही गृहस्थ के नाम पर घरेलू व्यभिचार करनेवाले नामधारी गृहस्थियों की दुर्दशा होती है। यहां तक कि कितने ही युवक तो हस्त-मैथुनादि अप्राकृतिक मैथुन और स्वप्नदोष आदि रोगों से नपुंसक बन जाते हैं। जब एक बालक या युवक बार-बार चेष्टाओं या व्यभिचार से वीर्य नष्ट करता है तो उसके शरीर में कई बार उत्तेजना होने से एक भयानक धक्का शरीर को लगता है। कामाग्नि से सारा शरीर जलने लगता है। शरीर के अन्दर जमा हुआ वीर्य

पिंघलने लगता है। जैसे शीत में जमा हुआ घृत अग्नि पर रखने से पिंघल कर पतला हो जाता है और पात्र (बर्तन) में छेद होने से बाहर निकल जाता है, इसी प्रकार छोटे छोटे बालकों में भी छोटी आयु में कामाग्नि जल उठती है और उनका वीर्य पतला होकर बहने लगता है और नाभि के नीचे मलाशय मूत्राशय के समीप जो वीर्य का कोष (खजाना) है उसमें ठहरने लगता है। और वीर्य से वीर्यकोष भर जाता है। यह वीर्य फिर लौटकर शरीर में ऊपर नहीं जाता और स्वप्नदोषादि के द्वारा बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार वीर्य का कोष बार बार भरता और खाली होता रहता है। वह वीर्य जो शरीर का राजा है जिसे शरीर का अंग बनना था, जो २५ वर्ष की आयु से पहले कभी भी व आयु भर शरीर से नहीं निकल सकता था तथा जो ऊर्ध्वगति होकर शरीर और मस्तिष्क की शक्ति का रूप धारण करता आज इच्छा के विरुद्ध और शरीर का सार अमृत रूपी वीर्य मूत्र के समान बुरी तरह टपक-टपक कर निकल रहा है, ऐसी अवस्था में बालक और युवक धाड़ मारकर रोते और चिल्लाते हैं।

उनके आंसू पूंछने के लिए यह ऊर्ध्वरेता होने का गुप्त रहस्य कर्त्तव्य भावना से लिख रहा हूं। इससे शुक्राशय (वीर्य के खजाने) में पड़ा हुआ वीर्य फिर ऊपर को जाने लगेगा। जैसे दीपक का तेल जाता है। यह ऋषियों की गुप्त विद्या है जो आज लाखों रुपये खर्च करने पर भी नहीं मिलती। कितने ही ब्रह्मचर्य के दीवाने इसकी रक्षा करने में रात-दिन एक कर देते हैं, भयंकर से भयंकर पर्वतों की गुफाओं और कन्दराओं को छान मारते हैं तब जाकर इसका भेद मिलता है। इसलिए इसको व्यर्थ न समझ लेना, इसका श्रद्धापूर्वक अभ्यास करो। इससे स्वप्नदोषादि रोगों से अवश्य ही पिंड छूट जायेगा और वीर्य-रक्षा में सफल हो जावोगे।

२. प्राणायाम-विधि

पहले सिद्ध आसन पर बैठ जाओ। उसकी विधि इस प्रकार है। बांये पैर को एड़ी अण्डकोश और गुदा इन्द्रिय के बीच में जो स्थान है उस पर लगाओ। यह वह स्थान है जहां से वीर्य वाहक नाडियां जाती हैं। इन ही में से वीर्य बाहर निकल जाता है। इसलिए पैर की एड़ी को इन नाड़ियों पर दबाकर लगाना चाहिए। दायें पैर की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपर जहां बाल उगते हैं, लगाओ। दोनों पैरों के गट्टे मिले हुए हों। दोनों पैरों के घुटने भूमि पर लगे हुए हों। सिर, ग्रीवा (गर्दन) मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) सब सम रेखा में (सीधे) रहने चाहियें। एक कपड़े की छोटी गद्दी बनाकर गुदा के नीचे रख लो। जिससे वीर्यवाहक नाड़ियों पर अधिक बल पड़े। दोनों हाथों को तानकर दोनों घुटनों पर रखो। शरीर सारा खिचा हुआ होना चाहिए। छाती तनी हुई तथा आगे को उभरी हुई हो। ठोड़ी का झुकाव थोड़ा सा छाती की ओर हो। केवल लंगोट लगाकर आसन में बैठो तो अच्छा होगा। यदि केवल मात्र इस सिद्धासन का ही अभ्यास किया जाये तो वह भी वीर्यरक्षार्थ तथा स्वप्नदोष को दूर करने में अत्यन्त हितकर है।

प्राणायाम करने से पूर्व यदि बायां स्वर चलता हो तो अच्छा है। जिधर से वायु आती हो उधर मुख रखो। जैसे अत्यंत वेग से वमन (कै) होता है और अन्न-जल बाहर निकल जाता है, वैसे ही प्राण (श्वास) को बल से बाहर फेंक दो। एक ही बार निरन्तर एक श्वास में सारी वायु बाहर निकल जाये, झटके दे देकर नहीं। श्वास निकलने से पूर्व नाभि के नीचे से मूत्र-इन्द्रिय का ऊपर संकोच करो (खींचो)। पहिले हृदय की वायु बल से बाहर निकालो, फिर ऊपर के फेफड़ों का श्वास निकाल कर खाली करना चाहिये,

फिर उदर (पेट) को खाली करना।* किन्तु ध्यान रखो—सारा प्राण एक श्वास में ही बाहर निकल जाये। श्वास तोड़ फोड़ कर कभी न निकालो। श्वास को लम्बा करके तथा निरन्तर गति देते हुए एक ही बार निकाल दो। जब श्वास सारा हृदय फेफड़ों और उदरादि का बाहर निकल जावे तो पेट को अन्दर की ओर खींचे रहो। श्वास को यथाशक्ति बाहर ही रोको। जब घबराहट हो तब धीरे धीरे वायु को ले लो, किन्तु अन्दर नहीं रोको यह एक प्राणायाम हुआ।

फिर उसी प्रकार दूसरा प्राणायाम, फिर बाहर निकाल कर बाहर ही रोक कर करो। इसी प्रकार तीन प्राणायाम करो। अन्दर नहीं रोको। पहले बाह्यकुम्भक का अभ्यास कम से कम एक वर्ष तक करना चाहिये। यही पहला प्राणायाम है जब तक यह सिद्ध न हो जाये तब तक दूसरा प्राणायाम जो अन्दर रोकने का है (इसे आभ्यन्तर कुम्भक कहते हैं) नहीं करना चाहिए। लोग अन्दर और बाहर रोकना दोनों एक साथ आरम्भ कर देते हैं। इसलिए लाभ तथा उन्नति नहीं होती। जब पहिले प्राणायाम में सफलता मिल जाये तब दूसरे का अभ्यास करना चाहिए। एक मास तक तीन प्राणायाम सायंकाल करो। फिर शनैः शनैः प्रतिमास संख्या बढ़ाते जाओ। यदि गो-दुग्ध, घृत व अन्य पौष्टिक भोजन पर्याप्त खाने को मिलें तो दोनों समय अभ्यास करना चाहिए और संख्या बढ़ाते बढ़ाते इक्कीस (२१) प्राणायाम तक कर सकते हैं। पौष्टिक भोजन का अभाव न करो, न ही नाक पकड़कर अधिक देर बलात् (जबरदस्ती) वायु रोकने का यत्न करो। इस प्राणा-याम में आरम्भ से लेकर अन्त तक एक विशेष क्रिया का ध्यान

*श्वास शनैः शनैः विधिपूर्वक निकालने से स्वयं हृदय, फुप्फुस और पेट की वायु क्रमशः एक बार में ही निकल जाती है।

रखना तथा अभ्यास करना है। वह यह कि श्वास निकालने से पूर्व जो नाभि के नीचे मूलाधार को खींचा था, उसे खींचे ही रखना है। ढीला नहीं छोड़ना और इसे खींचे रखने का तो अभ्यास करना है। जितनी देर वा जितने भी प्राणायाम करो मूलाधार को खींचे ही रखो। पहिले-पहल कुछ कठिनाई वा कष्ट प्रतीत होगा, किन्तु कुछ दिन के अभ्यास से ठीक हो जाएगा। फिर मूलाधार को खींचने से मूत्रेन्द्रिय तथा गुदा खिची रहेगी और वीर्य-कोष जहां वीर्य ठहरता है वह भी ऊपर को खिचा रहेगा। मूला-धार खींचते समय मन से नाभि के नीचे ध्यान करें कि हम अपने वीर्य को ऊपर खींच रहे हैं। सारे प्राणायाम में यही ध्यान करते रहो।

कुछ दिन के अभ्यास से वीर्य ऊपर को यथार्थ में खिचने तथा जाने लगेगा और जब आप निरन्तर अभ्यास करते-करते इक्कीस २१ तक पहुँच जायेंगे तो वीर्य की गति पूर्णतया ऊर्ध्व हो जायेगी। वीर्य ऊपर को मस्तिष्क की ओर बहने लगेगा आप ऊर्ध्वरेता हो जायेंगे। आपका वीर्यकोष खाली हो जायेगा और इसमें वीर्य आना ही बन्द हो जायेगा। फिर स्वप्नदोष कैसे होगा। आपकी इच्छा के बिना वीर्य का एक बिन्दु भी शरीर से बाहर नहीं निकल सकता। फिर कैसा स्वप्नदोष और प्रमेह होगा? किन्तु यह निरन्तर दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक अभ्यास करने से होगा। मैं यह कई बार लिख चुका हूं।

आप इसे दूसरी प्रकार से भली भाँति समझ जावेंगे। जब आप लघुशंका (पेशाब) करने जाओ और मूत्र-त्याग (पेशाब) करते समय बीच में ही नाभि के नीचे के भाग मूत्रेन्द्रिय को खींचो तो गुदा इन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय भी एक साथ खिचेगी और इससे मूत्र निकलना एकदम बन्द हो जायेगा और जब तक आप इसे ढीला

न छोड़ेंगे एक बून्द मूत्र भी बाहर नहीं निकल सकता। यह अनुभव आप करके देख लें या जब कुछ मास तक आप प्राणायाम कर अभ्यास कर लेंगे और आपको मूलाधार खींचे रहने का अभ्यास पक्का हो जायेगा तब आप देखेंगे कि स्वप्नों और स्वप्न-दोषों की संख्या घटती चली जायेगी। रात्रि को ऐसी अवस्था भी आयेगी कि कभी आपको स्वप्नदोष होने का अवसर आयेगा तो अर्धनिद्रा में आप मूलाधार को खींच लोगे और आपकी आंखें खुल जायेंगी, आप स्वप्नदोष से बच जाओगे। आपकी विजय होगी। आपकी विजय और हार आपके अभ्यास पर है। कम से कम एक वर्ष तक आप अभ्यास करें। इस प्राणायाम की जितनी प्रशंसा करें थोड़ी है, सब ऋषियों और विशेषतया पूज्यपाद महर्षि दयानन्द की कृपा है जो ऐसी विद्या इस गिरे हुये संसार को मिली है। इस प्राणायाम के अभ्यास से जहां स्वप्नादि रोग दूर होंगे वहां शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम और जितेन्द्रियता की प्राप्ति होगी। सब शास्त्र और विद्याओं को थोड़े ही काल में समझकर विद्यार्थी उपस्थित कर लेगा। इसका अभ्यास सब युवकों, विद्यार्थियों तथा ब्रह्मचर्य प्रेमीयों स्त्री तथा पुरुषों को करना चाहिये। इससे मन और इन्द्रियां के सब दोष क्षीण और दूर हो जाते हैं और मनुष्य इनको अपने वश में कर लेता है। यह वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन और परम औषध है।

३. लिङ्गोट बांधना

वीर्य रक्षा में जहां प्राणायाम आदि और साधन सहायक हैं वहाँ लिङ्गोट बांधना भी एक उत्तम उपाय है। सदा लिङ्गोट बांधे रखने से मन में वीरता के भाव बनें रहते हैं, मनुष्य कटिबद्ध रहता है। मन शान्त रहता है। इन्द्रिय की अनावश्यक उत्तेजना समाप्त हो जाती है और अण्ड वृद्धि रोग भी नहीं होने पाता।

बहुत से व्यक्तियों का विचार है कि लिङ्गोट से व्यक्ति नपुंसक बन जाता है, किन्तु उनका यह विचार नितान्त निराधार एवं भ्रमपूर्ण है। लिङ्गोट से तो पुंसत्व घटने के स्थान पर बढ़ता है, हां अस्वाभाविक उत्तेजना अवश्य नष्ट हो जाती है। अतः लिङ्गोट से घबरायें नहीं। लिङ्गोट को हमेशा बांधे रखें। लिङ्गोट दो रखने चाहियें जिससे सुबह शाम स्नान के बाद बदल लिया करें। लिङ्गोट इकहरे और पतले कपड़े का ही बनवाना चाहिए। मोटे लिङ्गोट से गर्मी उत्पन्न होकर हानि की सम्भावना रहती है। लिङ्गोट को सप्ताह में एक बार साबुन से अवश्य धो लिया करें।

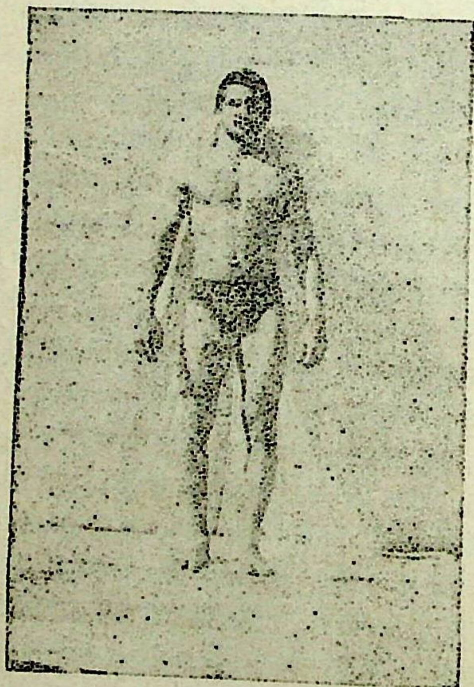
४. व्यायाम

प्रतिदिन जो भोजन किया जाता है, उसके पचने पर क्रमशः रस रक्तादि सात धातुयें बनती हैं। इन्हीं के आधार पर यह शरीर ठहरा हुआ है। यदि जठराग्नि ठीक नहीं होगी, तो उपर्युक्त धातुएं सम्यक्तया नहीं बन पायेंगी, जिससे शरीर कमजोर हो जायेगा। इसलिए पाचनक्रिया को ठीक रखने तथा खाये हुये भोजन के अधिकांश भाग को शरीर का अङ्ग बनाने हेतु व्यायाम प्रमुख साधन है। व्यायाम से भोजन शीघ्र पचता है, व्यायामशील व्यक्ति को कभी कब्ज (मलबन्धादि) नहीं होती। जो नित्यप्रति नियमपूर्वक मन लगाकर व्यायाम करता है उसकी छाती, भुजा, पेट, जंघा आदि सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग बहुत शीघ्र ही सुन्दर, सुदृढ़, स्वस्थ और सुडौल बन जाते हैं। शरीर पर व्यर्थ की चर्बी नहीं बढने पाती। व्यायाम से शरीर का रङ्ग रोगन निखरता है, मुख पर तेज और लाली छा जाती है। व्यायाम से वीर्य की गति ऊपर को हो जाती है और वह ओज के रूप में मस्तिष्क पर चमकने लगता है. जिससे उसकी वह कमनीय-कान्ति सबके मन को अनायास ही अपनी ओर खींच लेती है। व्यायाम करने वाले को

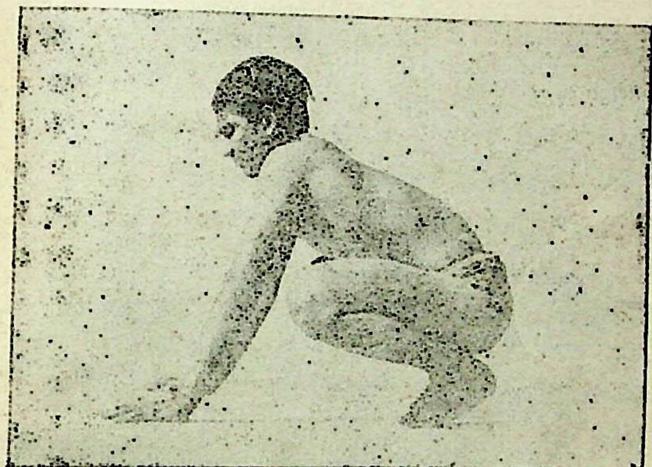
स्वप्नदोषादि धातु रोग कभी नहीं सताते। व्यायाम से शरीर में वीर्य की खूब वृद्धि होकर स्थिरता आजाती है। अतः अपनी उन्नति चाहने वाले के लिये प्रतिदिन नियम-पूर्वक व्यायाम करना अत्यन्त आवश्यक है।

दण्ड-बैठक

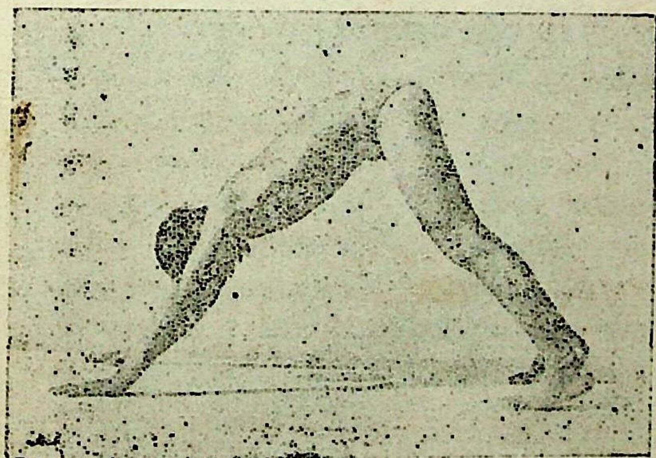
आजकल दो प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं, भारतीय और विदेशीय। हम यहां दण्ड-बैठक, आसन और कुश्ती आदि कुछ भारतीय व्यायामों का ही वर्णन करेंगे।



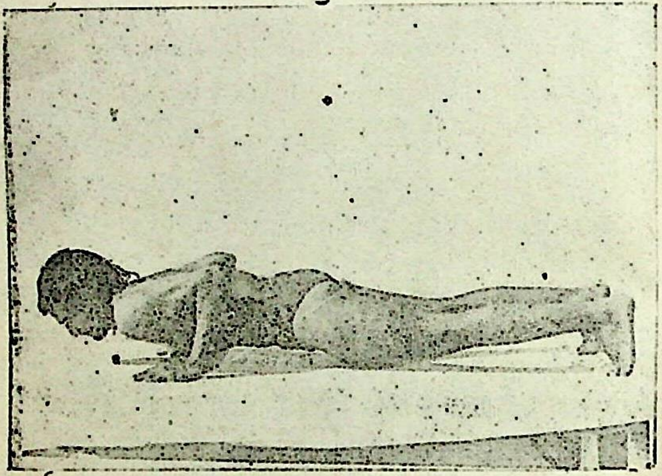
बैठक की सज्जा



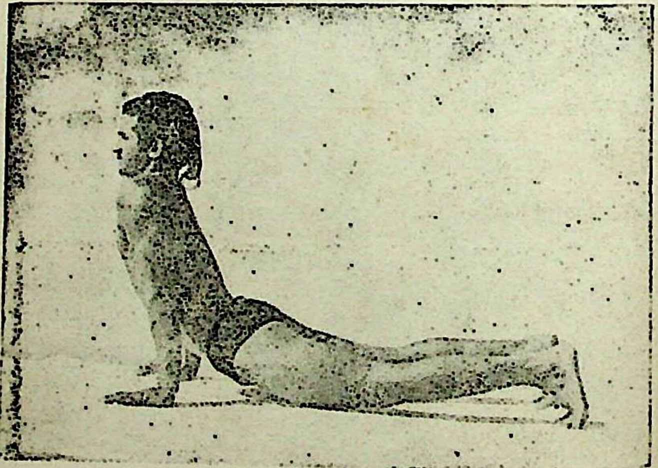
दण्ड की सज्जा



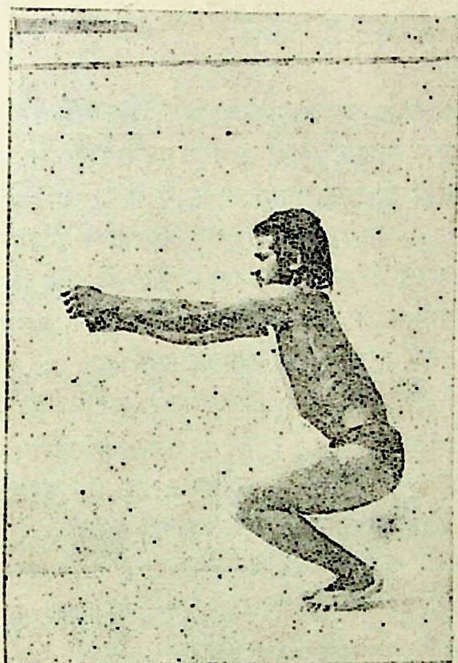
दण्ड की पूर्वावस्था



दण्ड की मध्य अवस्था



दण्ड की समाप्ति



सपाट बैठक

दण्ड-बैठकों से लाभ

शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को सुडौल, सघन, गठीला और सुन्दर बनाना दण्ड बैठकों का प्रथम कार्य है। जो नित्यप्रति दोनों समय नियम से श्रद्धापूर्वक इन दण्ड-बैठकों को करता है। और मन, वचन, कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसके शरीर की सभी माँस-पेशियां लोहे की तरह कठोर और सुदृढ़ हो जाती हैं। उसकी चौड़ी उभरी हुई छाती, लम्बी, सुडौल और गठी हुई भुजायें, चढ़ी हुई जंघायें, कसी हुई पिण्डलियां और चमचमाता हुआ मुख-मण्डल दर्शकों को मोह लिया करता है। मोहे क्यों नहीं, जो कुछ उसने पौष्टिक पदार्थों का सेवन किया उसको सम्यक्तया पचाकर शरीर का अङ्ग बनाया और उससे बना हुआ अन्तिम सार वीर्य

भी व्यायाम प्राणायाम के द्वारा ओज बनकर खून में मिल गया और फिर उसने अपना रङ्ग दिखाया।

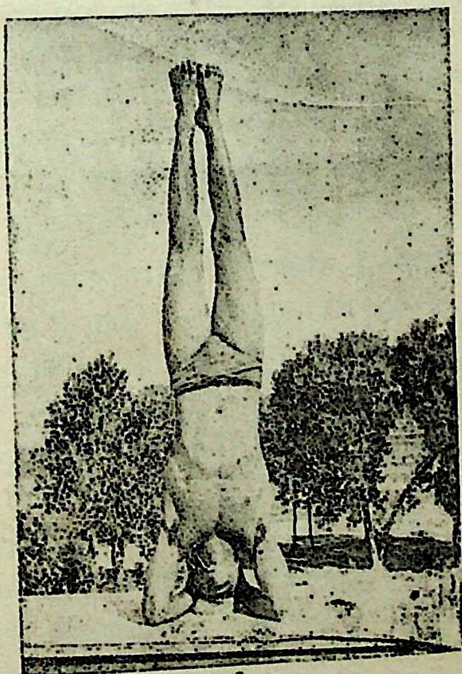
आसन

आसनों का व्यायाम भी स्वास्थ्य के लिये परमोपयोगी है। आसनों का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है, ये शरीर के आभ्यन्तर अवयवों को शुद्ध एवं कार्य करने में सक्षम बनाते हैं। इनसे शरीर के स्नायु पुष्ट होते हैं। आसनों से स्नायु बार-बार खिचते और सिकुड़ते हैं उनके इस प्रकार खिचने और सिकुड़ने से वहां खून का प्रवाह पहले की अपेक्षा और तीव्र हो जाता है, खून के तीव्र प्रवाह से उनमें अटका हुआ मल जो खून की गति में बाधा डाल रहा था, साफ हो जाता है, जिससे सारे शरीर में रक्त की गति तेजी से होने लगती है। खून की तेजी से शरीर में बल, वीर्य की वृद्धि तथा खून की शुद्धि अधिक होती है, मानसिक एवं बौद्धिक शक्ति को चेतना मिलती है। शरीर विज्ञान के विशेषज्ञों का यह मत है कि आसनों का व्यायाम सर्वोत्तम व्यायाम है। शरीर को निरोग स्वस्थ तथा लचकीला बनाये रखने का उत्तम एवं सरल साधन आसनों का व्यायाम ही है। वैसे दण्ड बैठक तथा आसन दोनों मिलकर ही पूरा व्यायाम होता है। परन्तु एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि आसनों का जितना दीर्घकाल तक अभ्यास करेंगे उतना ही लाभ होगा क्योंकि आसनों का प्रभाव दूसरे व्यायामों की अपेक्षा देर में जाकर होता है, अतः इनका अभ्यास श्रद्धा से करते रहें, कुछ दिनों में लाभ होता दिखाई देगा। इससे यह न समझें कि यह लाभकारी नहीं है। कारण यह है कि आसन शरीर की सभी नस नाड़ियों के रोग दूर करके उन्हें मजबूत करते हुये लाते हैं; इसीलिये आसनों का प्रभाव विलम्ब से हुवा मालूम होता है और उनका प्रभाव चिरस्थायी भी होता है। कहा भी है—"धीरे पके सो मीठा होय।'

आसन आदि सभी प्रकार का व्यायाम खाली पेट शौचादि से निवृत्त होकर ही करना चाहिए। वैसे तो आसन बहुत हैं परन्तु इनमें से जो आसन जिसके लिए अधिक लाभप्रद हों उन्हें चुनकर उनका नित्यप्रति अभ्यास करें और कभी-कभी समय निकालकर औरों को भी कर लिया करें।

१- शीर्षासन

अभ्यास आरम्भ करने से पहले चाहे वह दण्ड, बैठक, कुश्ती दौड़ आसन या और किसी प्रकार का हो शीर्षासन पहले अवश्य कर लेना चाहिए, इसे व्यायाम के पश्चात् करने से हानि हो सकती है।

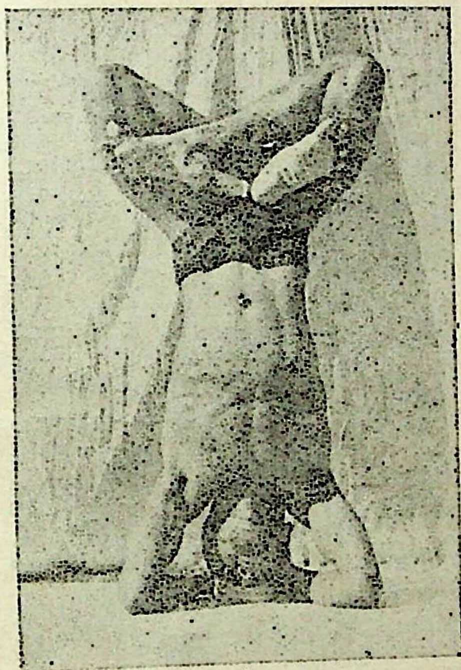


शीर्षासन

शीर्षासन की विधि इस प्रकार है—पहले भूमि पर आसन बिछा कर उसपर कपड़े की गोल गद्दी बनाकर रखें और उसपर शिर रख दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिला शिर के दोनों ओर दृढ़ता से रखें। पांवों को मोड़कर शिर के समीप ले आवें, तत्पश्चात् शरीर को शनैः शनैः ऊपर को उठाते हुये शिर के बल खड़े हो जावें। मस्तिष्क और सिर के बीच का भाग ही वस्त्र पर टिकना चाहिये। शरीर नितान्त सीधा रहे. पांवों की अंगुलियां ऊपर को खिंची हुई और नेत्र खुले रहने चाहियें। घुटने मुड़ने न पावें, श्वास-प्रश्वास की क्रिया पूर्ववत् चलती रहे।

शीर्षासन करने के पश्चात् कुछ समय तक सीधा खड़ा रहना चाहिए। कुछ आसनों के अभ्यासियों का मत है कि जितने समय तक शीर्षासन करें उतने ही समय तक सीधा खड़ा रहने से विशेष लाभ होता है। यदि समय के अभाव से अधिक विलम्ब तक खड़े न रह सकें तो अन्य खड़े होकर करने के आसन तथा व्यायाम करने चाहियें।

शीर्षासन एक दो सैकिण्ड से आरम्भ करना चाहिए और शनैः शनैः अपनी शक्ति तथा भोजन के अनुसार इसके करने का समय बढा लेना चाहिए। पन्द्रह या बीस मिनट का अभ्यास हो जाने पर वीर्यसम्बन्धी स्वप्नदोष, धातुक्षय प्रमेहादि विकार दूर होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है, स्वास्थ्य सुन्दर तथा चेहरा लाल हो जाता है। बुद्धि तथा नेत्रज्योति बढ़ती है, जठराग्नि तीव्र होती है, बढी हुई प्लीहा (तिल्ली) और यकृत् (जिगर) ठीक हो जाते हैं। अर्श, गुल्म, उदावर्त, आध्मान, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, बहुमूत्र प्रभृति उदर रोग तथा फोड़े-फुन्सी, कुष्ठ, कण्डू (खाज), पामा, पीनस आदि चर्म रोगों में भी लाभदायक है।



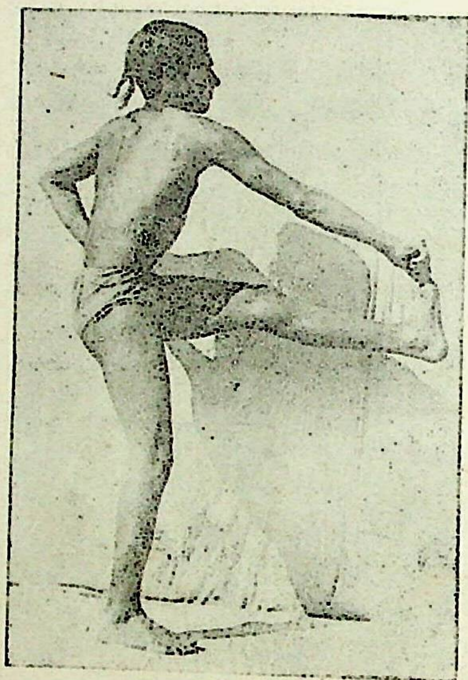
ऊर्ध्वपद्मासन

२- ऊर्ध्वपद्मासन

शीर्षासन पर ही पद्मासन लगाने से ऊर्ध्वपद्मासन हो जाता है। इस समय मूलबन्ध लगाने से अत्यन्त लाभ होता है, यह आसन शीर्षासन का ही दूसरा रूप है, अतः लाभ उसके समान ही हैं।

३- हस्तपादांगुष्ठासन

विधि—दोनों हाथों को कटि (कमर) पर रखकर सीधे खड़े हो जावें, एक पांव को शनैः शनैः ऊपर को उठावें, पांव घुटने में से न मुड़े, जब पांव सम्मुख आजावे तब जिस ओर का पांव हो उसी



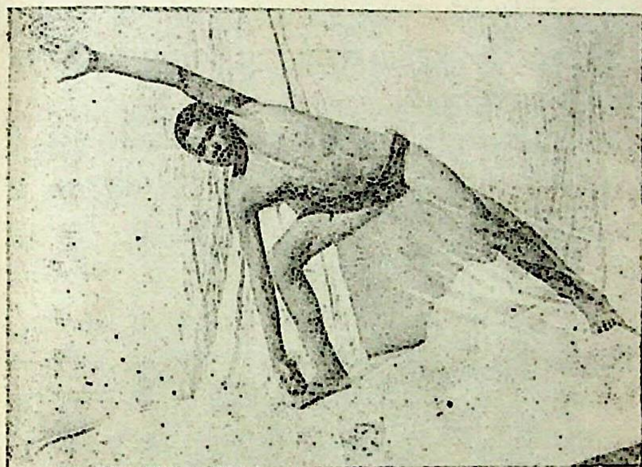
हस्तपादांगुष्ठासन

हाथ से पांव के अंगूठे को पकड़ें, श्वास अन्दर रहना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे हाथ तथा पांव से भी करें। इस आसन को चित्त लेट कर भी कर सकते हैं।

लाभ—इस आसन के करने से ग्रीवा, कटि और उदर के विकार नष्ट होने हैं. पिण्डली जङ्घा आदि के लिए भी यह लाभदायक है।

४- त्रिकोणासन

विधि—प्रथम दोनों पैरों में ३ या ४ फुट का अन्तर रखकर दायां हाथ ऊपर और बायां हाथ बायें पैर के साथ नीचे रखें।



त्रिकोणासन

शरीर को बायीं ओर इस प्रकार झुकायें कि दायां पैर कटि एवं दायीं भुजा एक सीधी रेखा में आजाये। ऐसा करने से शरीर को त्रिकोण जैसी आकृति बन जायेगी। बायां पैर यदि सम्भव हो तो तना ही रहे या कुछ पार्श्व में झुका भी सकते हैं। कुछ काल इस अवस्था में रहकर धीरे धीरे पूर्वास्था में आजायें, इसी भांति दायीं ओर से अभ्यास करें।

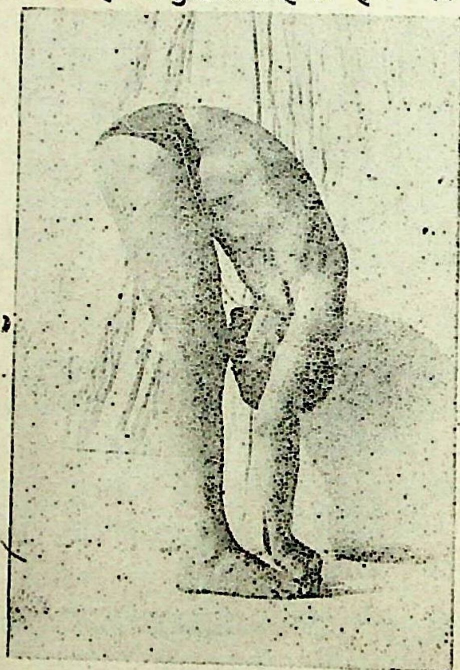
लाभ—भली प्रकार रक्त-संचार होकर पीठ, पैर, पेट इत्यादि नीरोग रहते हैं। पैरों का टेढापन दूर होता है। पसली में होने वाले रोगों की निवृत्ति होती है।

५- पादहस्तासन

विधि—सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को ऊपर से धीरे धीरे झुकाते लायें और दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ लें। श्वास को बाहर निकाल सिर को घुटनों में लगायें। घुटने सीधे रहें। इसी प्रकार

पुनः श्वास बाहर फेंककर पांच-छः बार करें। जो एक बार ही पर्याप्त देर तक कर सके तो अच्छा है। इस अवस्था में श्वास मध्यम गति से चलता रहेगा।

लाभ—इस आसन से तिल्ली और यकृत् के दोष दूर होते हैं, सुषुम्णा केन्द्र सजग होकर बुद्धि तीव्र होती है। कोष्ठबद्धता दूर



पादहस्तासन

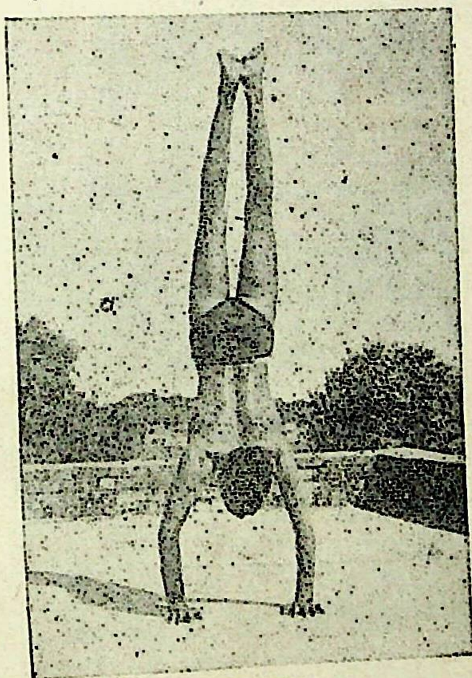
होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होकर पेट में बढी हुई अनावश्यक चर्बी दूर होती है। रीढ की हड्डी मजबूत होती है और कद बढता है।

६- वृक्षासन

विधि—पहले सीधे खड़े हो जावें, पश्चात् हाथों को भूमि पर

जमाकर पांवों को शनैः शनैः उठाकर ऊपर ले जाव और शीर्षासन की भांति बिल्कुल सीधे कर देवें, दोनों पांव मिले हुये रहें। वृक्ष की भांति शरीर सीधा एवं तना हुआ रहना चाहिये।

लाभ—इसके लाभ शीर्षासन के समान हैं, इसके करने से

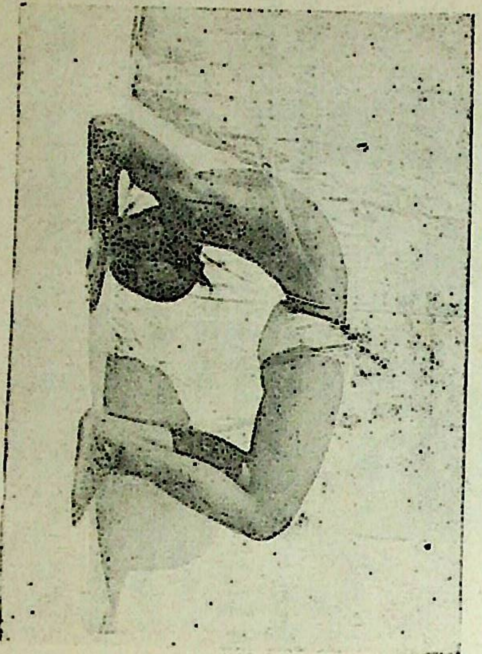


वृक्षासन

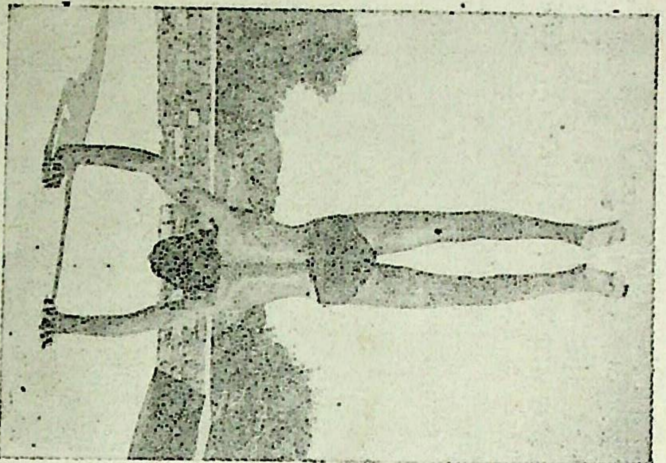
विशेषतः हाथों का बल बढता है, हाथों की कलाई और पंजे सुदृढ होते हैं। छाती की वृद्धि होती है और फेफड़ों को शक्ति मिलती है।

७- मयूरचाल

वृक्षासन करके उसी स्थिति में सावधानी से क्रमशः पैरों की तरह हाथों को उठाते हुये आगे चलना ही मयूरचाल है।



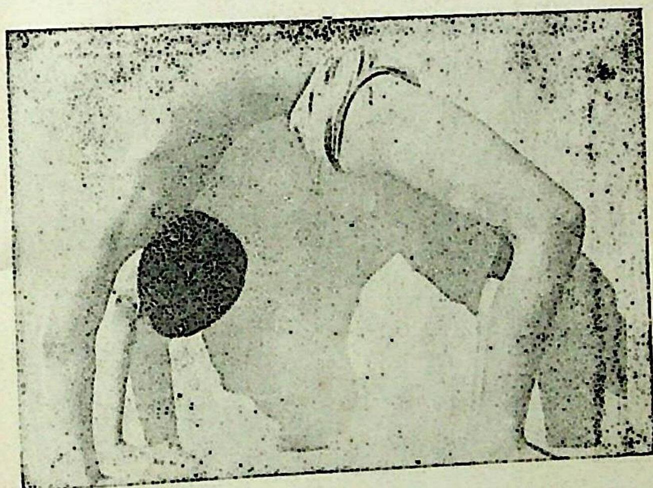
चक्रासन का एक प्रकार



मयूरचाल

८- चक्रासन

विधि—चित लेट जाइये। घुटनों को मोड़ें और दोनों हाथों की उंगलियां कन्धों के नीचे उलटी लेजाकर समस्त शरीर हाथों तथा पैरों के बल ऊपर तान दें। इससे अर्ध-चक्र जैसी आकृति बन जायेगी। अभ्यास को यहां तक बढायें कि हाथ और पैर आपस में मिल जायें।



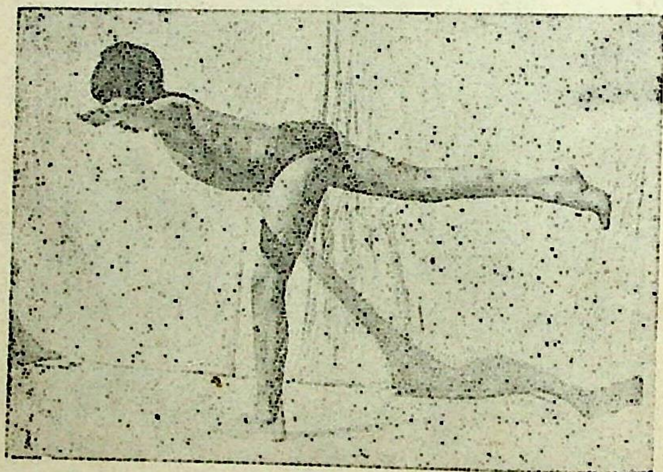
चक्रासन का दूसरा प्रकार

लाभ—हलासन के ठीक विपरीत दिशा में रीढ़ को मोड़ने से उसका सम्पूर्ण व्यायाम हो जाता है। रीढ़ का लचकीला होना स्वास्थ्य का प्रथम साधन है। छाती, पीठ, उदर, कटि, ग्रीवा, भुजायें, हाथ, टांगें, ये सभी अङ्ग बलिष्ठ और लचकीले होने लगते हैं। इसके अभ्यास से वृद्धावस्था में भी कमर नहीं झुकेगी।

९- विमानासन

विधि—दोनों पैरों पर सीधे खड़े होकर, पहले कटि से ऊपर

के भाग को आगे झुका दें, दृष्टि सामने रहे। फिर दोनों हाथों को भी दायें बायें फैला कर सीधा कर दें और एक पैर को भी ऊपर उठाकर पीछे फैला दें, केवल एक पैर पर खड़े रहें। उठा हुआ पैर और धड़ सम रेखा में रहें। इसी प्रकार दूसरे पैर से करें।



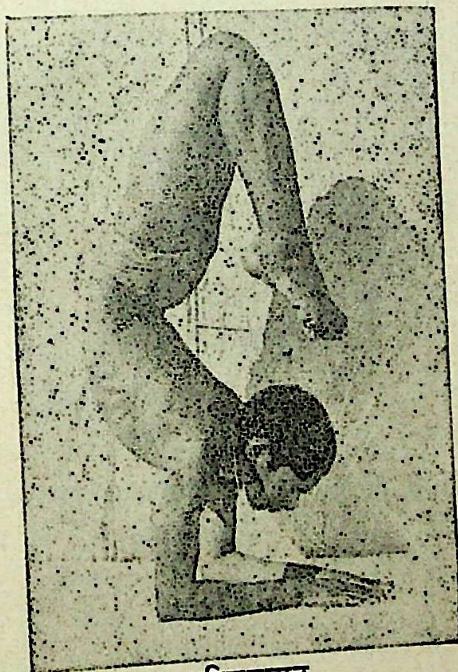
विमानासन

लाभ—इससे पैर और कमर मजबूत होती है. कमर में लचक पैदा होती है, आखों की ज्योति बढती है। शरीर वश में रहता है।

१०- वृश्चिकासन

विधि—इस आसन को करने के लिए प्रथम भूमि पर बैठ कर कोहनी से पंजे तक के हाथ भूमि पर रखें, हाथों की हथेलिया भूमि पर लगी रहें और अंगुलियां फैली रहें। हाथों पर ही सम्पूर्ण शरीर के भार को मोड़ते हुए पांवों को घुटने में से मोड़कर रखने का यत्न करें, ग्रीवा को सन्तुलित करते हुए, पांवों को शनैः शनैः

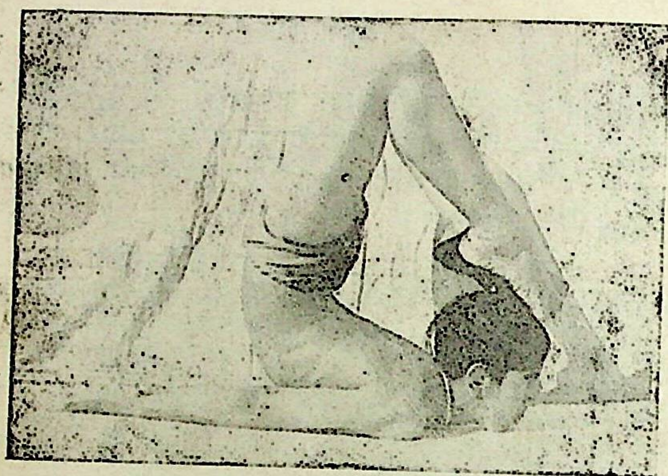
ऊपर उठावें और कमर को मोड़ते हुए पांवों को घुटने में से मोड़कर रखने का यत्न करें, ग्रीवा को ऊपर को उठावें, श्वास अन्दर रहे। शरीर की आकृति डंक उठाये हुये बिच्छू के तुल्य बन जावे।



वृश्चिकासन

११- प्रसृतहस्त वृश्चिकासन

विधि—भूमि पर शरीर के आगे के भाग को रखकर लेट जावें, हाथों को पांव के साथ पीछे फैला दें, पश्चात् छाती के बल इस आसन को करें अर्थात् पांवों को ऊपर से लाकर शिर या भूमि पर टेक दें।



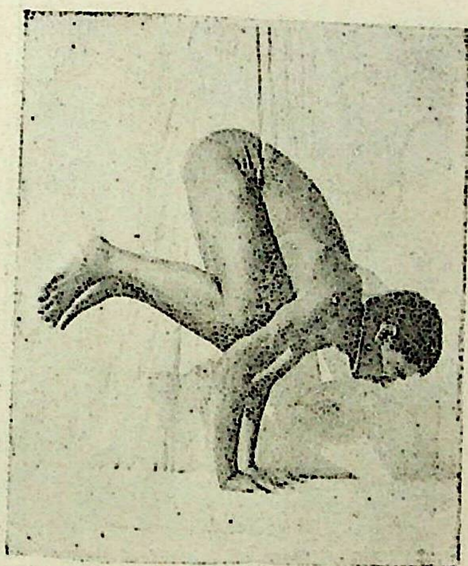
प्रसृतहस्त वृश्चिकासन

दोनों के लाभ—हाथों और बाहुओं में बल बढ़ता है, मेरुदण्ड और पेट निर्दोष रहते हैं, शरीर हल्का और फुर्तीला रहता है। आमवात, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता आदि में हितकर है, पाचनशक्ति बढ़ती है, लम्बाई बढ़ती है. इस आसन का अभ्यास करते रहने से वृद्धावस्था में भी कमर टेढ़ी नहीं होती

१२- बकासन

विधि– दोनों पैरों के घुटने मोड़कर उन्हें हाथों की कोहनियों पर जमाकर सारे शरीर को हाथों पर ही संतुलित करें।

लाभ—हाथ फेफड़े और गले की अस्थियां नीरोग एवं सुदृढ़ होती हैं।



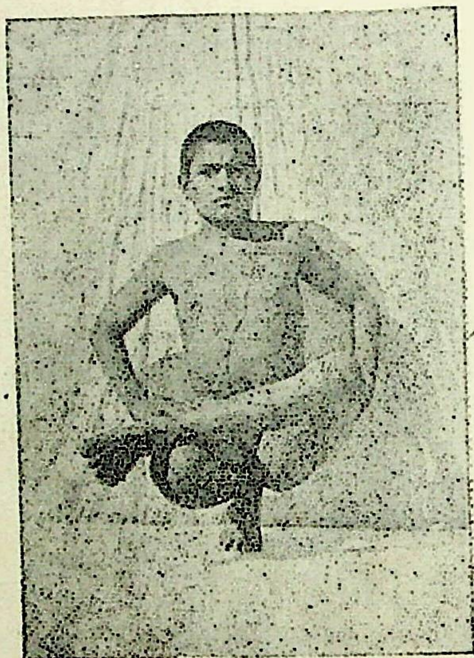
वकासन

१३—पादांगुष्ठासन

विधि—बायें पैर की एड़ी को अण्डकोष एवं गुदेन्द्रिय के मध्य स्थापित करें। दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने पर रखें। केवल बायें पैर के पञ्जे पर ही सारा शरीर सन्तुलित रहे। दोनों हाथों को सामने जोड़ लें या कटि पर रख सकते हैं। इनसे सन्तुलन में सहायता मिलती है। इसी प्रकार दायें पैर से भी अभ्यास करें।

लाभ—इस आसन को करते समय जहां पर एड़ी लगाई जाती है वही स्थान वीर्यवाहिनी नाड़ियों का है, इस स्थान को दबाने से वीर्य की अधोगति नहीं होती, अतः यह आसन वीर्यरक्षा में बहुत सहायक है। स्वप्नदोषादि भी नहीं होते। वात (बादी) तथा रक्त

दोनों प्रकार के बवासीर को नष्ट करता है। नेत्रज्योति स्थिर रहती है।



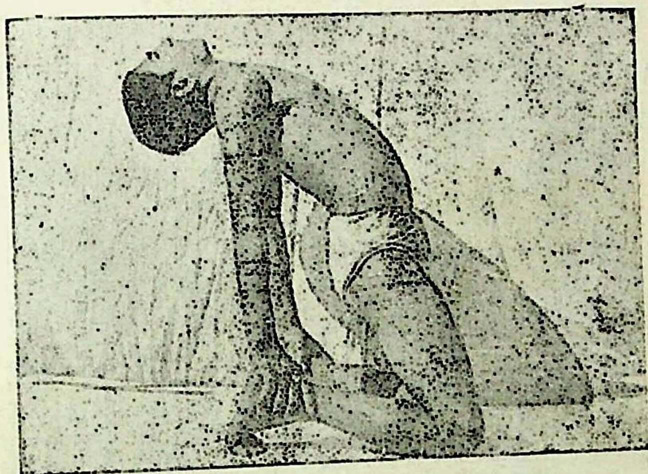
पादांगुष्ठासन

१४—उष्ट्रासन

विधि—पहले घुटनों को भूमि पर पश्चात् हाथों को ऊपर से लाकर एड़ियों पर रखें, कमर को शनैः शनैः झुकाते हुये शरीर के मध्यभाग को ऊपर उठावें, श्वास अन्दर रहे, शरीर को जितना अधिक खींचा जावे उतना अच्छा है।

लाभ—मेरुदण्ड तथा पेट को निर्दोष बनाता है, पीठ के टेढेपन को दूर करता है, आंतों को शक्ति मिलती है, क़द बढ़ता है,

जठाराग्नि प्रदीप्त होती है।



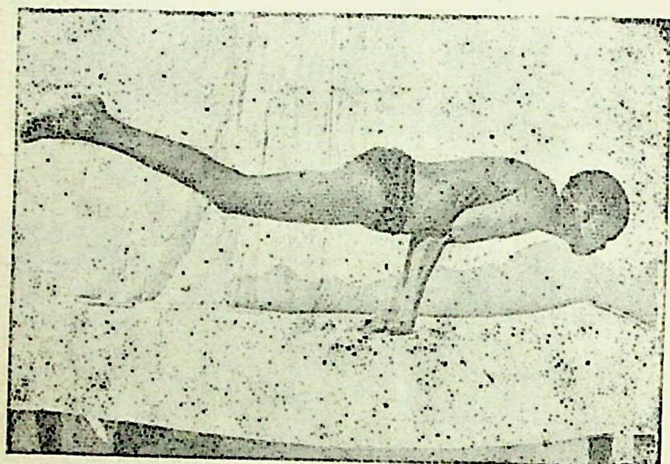
उष्ट्रासन

१५—मयूरासन

विधि—इस आसन को करने के लिये हाथों के पञ्जे पांवों की ओर करके दृढ़ता से भूमि पर जमावें, हाथों के पञ्जों में एक बालिश्त से अधिक अन्तर न रहे। कोहनियों को मिलाकर नाभि पर लगा पावों को ऊपर उठावें, दोनों पांव मिले हुये तथा तने हुये रहने चाहियें, शिर ऊपर को उठा हुवा रहे। मोर की भांति सम्पूर्ण शरीर का भार पञ्जों पर सन्तुलित रहना चाहिये। आरम्भ में इस आसन का अभ्यास किसी ऊंचे स्थान मेज, कुर्सी, चबूतरे आदि पर करना चाहिये।

लाभ—इस आसन के करने से जठराग्नि तीव्र होने के कारण पेट के रोग नहीं होते। हाथों के पहुंचे दृढ़ होते हैं, पेट की चर्बी भी कम हो जाती है। संग्रहणी, अतिसार आदि आन्तों के रोगों में

लाभप्रद है।



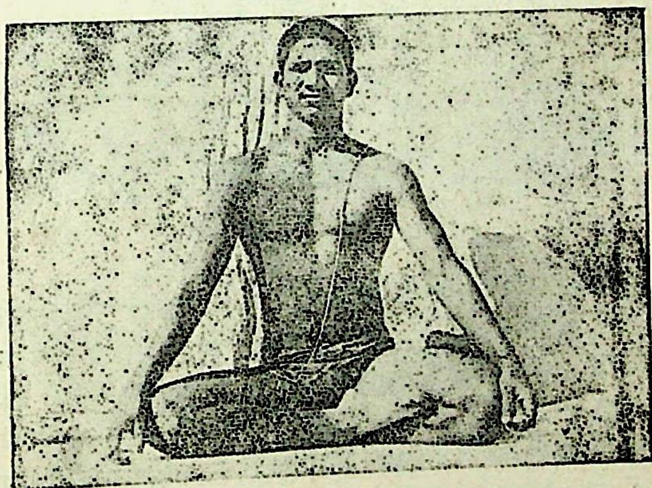
मयूरासन

१६— सिद्धासन

विधि—समतल स्थान पर बैठकर बायें पांव की एड़ी गुदा और अण्डकोष के बीच के स्थान पर जमाकर रखें और दाहिने पांव की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपर तथा पञ्जा बायें पांव की जङ्घा और पिण्डली के बीच में रहे। दोनों पांवों के गट्टे मिले हुये रहें, ठोड़ी का झुकाव कुछ नीचे की ओर करें अथवा कण्ठमूल में लगावें, हाथ घुटनों पर रहें, दृष्टि नासिकाग्र भाग पर स्थिर रहे, मेरुदण्ड ग्रीवा आदि सभी समरेखा में सरल रहने चाहिएं।

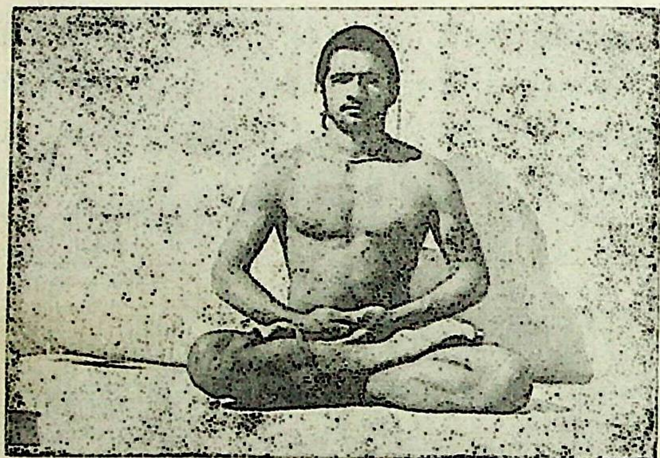
लाभ—इस आसन के करने से पाचनशक्ति बढ़ती है। अतिसार, श्वास, कास, बहुमूत्र आदि रोग दूर होते हैं। हृदय

बलवान् होता है। स्वप्नदोष, प्रमेह आदि धातु सम्बन्धी सब दोष नष्ट हो जाते हैं। मन एकाग्र एवं शान्त होकर वश में आ जाता है, विषयलालसा तथा कामवासना कम होती है, वीर्य की ऊर्ध्वगति होती है। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिये इसका विशेष अभ्यास करना चाहिये। इसकी सिद्धि से ब्रह्मचर्य की भी सिद्धि होती है। इस आसन को एक प्रकार से ब्रह्मचर्य का प्राण ही कहना चाहिये। इसे करते समय मूलबन्ध अवश्य लगाना चाहिये।



सिद्धासन

१७—पद्मासन

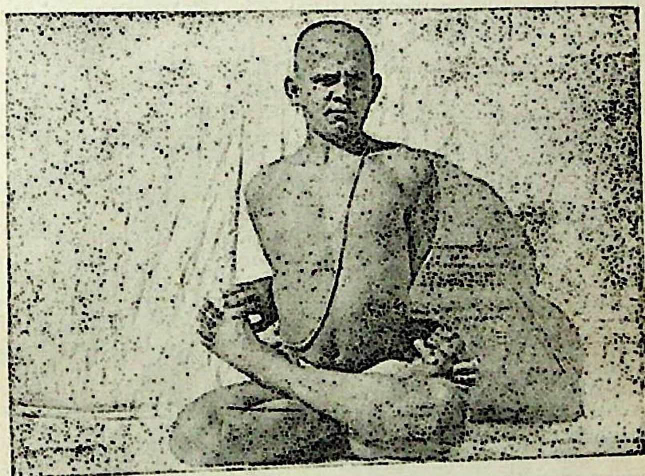


पद्मासन

विधि—पहले भूमि पर बैठ जायें फिर बायें पैर को दाहिनी जङ्घा पर दाहिने पैर को बायीं जङ्घा पर चढायें। दायें हाथ के ऊपर बायें हाथ को रखें। कुहनियां वाहर की ओर निकली हुई हों। कटि, सीना एवं शिर एक सीध में रहें। घुटने नीचे टिकने चाहियें। इस में कमल के पुष्प की पंखुड़ी के सदृश आकृति बन जाने से इसे कमलासन भी कहते हैं।

लाभ—इस आसन में रीढ की हड्डी पूर्ण रूप से सीधी रहती है। ध्यान के लिये यह आसन अत्युत्तम है। इसके साथ यदि मूल-बन्ध भी लगाया जाय तो ब्रह्मचर्य में बड़ी सहायता मिलती है। सन्ध्या इत्यादि में निद्रा आने पर इस आसन से दूर की जा सकती है।

१८—बद्धपद्मासन



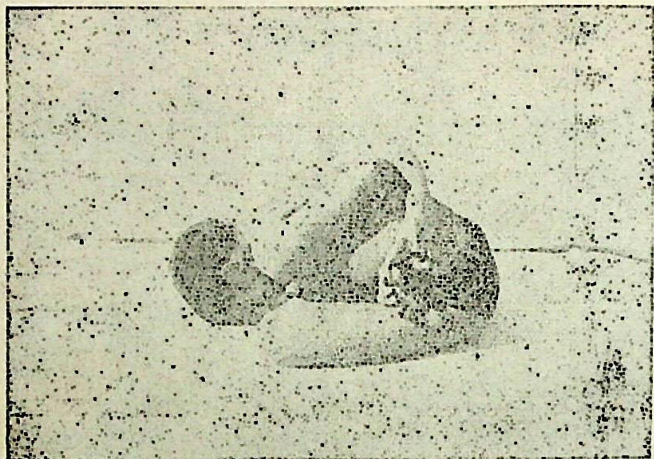
बद्धपद्मासन

विधि—पद्मासन की अवस्था में ही हाथों को पीठ के पीछे से लाकर दायें हाथ से बायें और बायें हाथ से दायें पैर का अंगूठा पकड़ने से बद्धपद्मासन हो जाता है। लाभ पूर्ववत् हैं।

१९—योगमुद्रासन

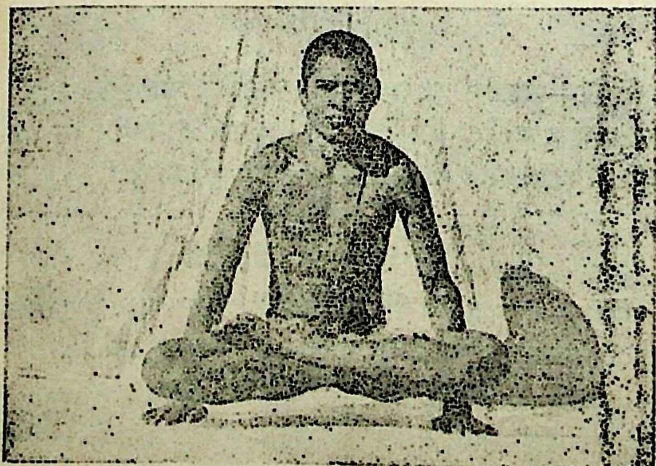
विधि—बद्धपद्मासन की स्थिति में ही श्वास को बाहर निकाल कर पेट को अन्दर खींच लें और शिर को भूमि पर टेक दें।

लाभ—पृष्ठवंश के दोष नष्ट होते हैं। अन्तड़ियों पर दबाव पड़ने से कब्ज दूर होती है। सुषुम्णा केन्द्र की जागृति होती है।



योगमुद्रासन

२०—उत्थितपद्मासन

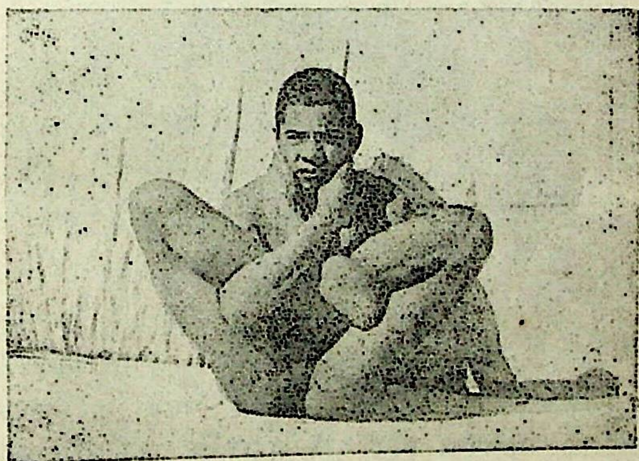


उत्थितपद्मासन

विधि—पूर्ववत् पद्मासन लगाकर दोनों हाथों की हथेलियों को जङ्घाओं के पास बाहर की तरफ भूमि पर रख कर दोनों हाथों पर शरीर को उठावें, जितना अधिक उठा जाये उतना अच्छा है।

लाभ—हाथों के कन्धों में बल की वृद्धि होकर वे सुदृढ़ होते हैं, पेट ठीक रहता है और लाभ पद्मासन के समान हैं।

२१—गर्भासन

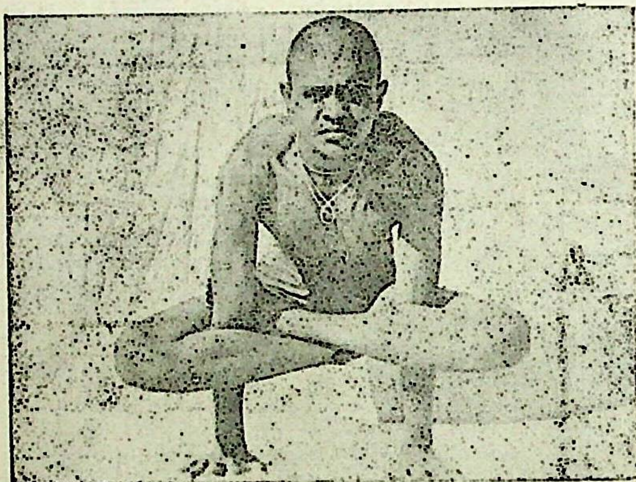


गर्भासन

विधि—कुक्कुटासन की तरह हाथों को कोहनियों तक नीचे निकाल कर दायें हाथ से बायां और बायें से दायां कान पकड़ें शरीर का भार नितम्बों पर रहे।

लाभ—आंतों के विकार दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

२२—कुक्कुटासन

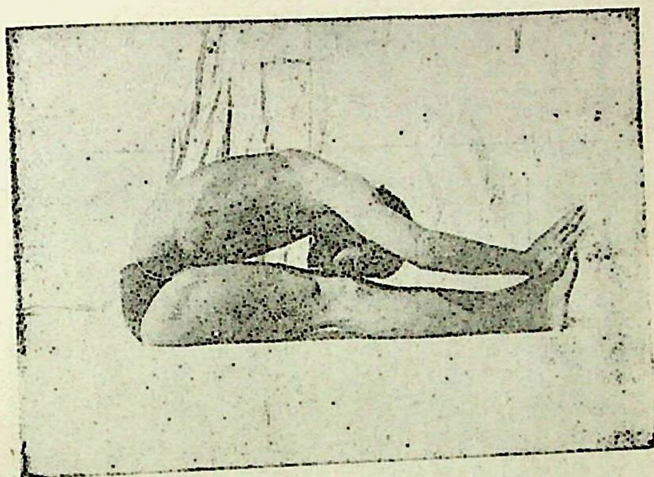


कुक्कुटासन

विधि—पद्मासन लगाये हुये ही दोनों हाथों को जंघा और पिण्डलियों के मध्य कोहनियों तक नीचे निकाल कर, हाथों के पञ्जों को भूमि पर जमाकर सारे शरीर के भार को हाथों पर ऊपर उठालें।

लाभ—छाती, भुजा और पृष्ठवंश दृढ़ होते हैं, पेट नरम होता है।

२३—पश्चिमोत्तानासन

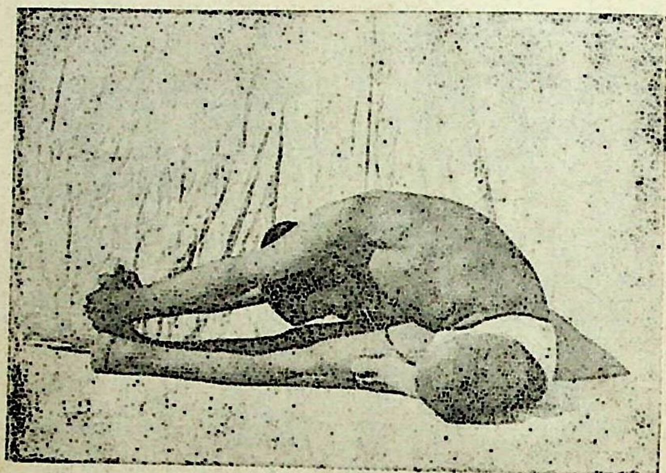


पश्चिमोत्तानासन

विधि—भूमि पर वैठकर दोनों पांवों को सीधा पसार दें, कुछ आगे को झुकते हुए दोनों हाथों से दोनों पांवों के अंगूठों को पकड़लें और साथ ही श्वास को बाहर निकाल कर पेट को अन्दर खेंचें तथा शिर घुटनों पर रखें, यदि हो सके तो पांवों को वीच में भूमि पर रखने का प्रयत्न करें। पांव घुटनों में से न मुड़ें और पांव के पञ्जे भी आगे को तने रहें।

लाभ—पेट के लिये यह आसन सर्वोत्तम है, इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, पेट हल्का तथा कोमल रहता है, पेट की नस-नाड़ियां मल रहित हो जाती हैं, चर्वी कम होकर पेट छोटा हो जाता है। अजीर्णता, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदर पीड़ा प्रभृति उदरविकार समूल नष्ट होते हैं। यकृत् और प्लीहा निर्दोष हो जाते हैं, कुवड़ापन दूर होता है, कद और आयु की वृद्धि होती है।

२४.—जानुशिरासन

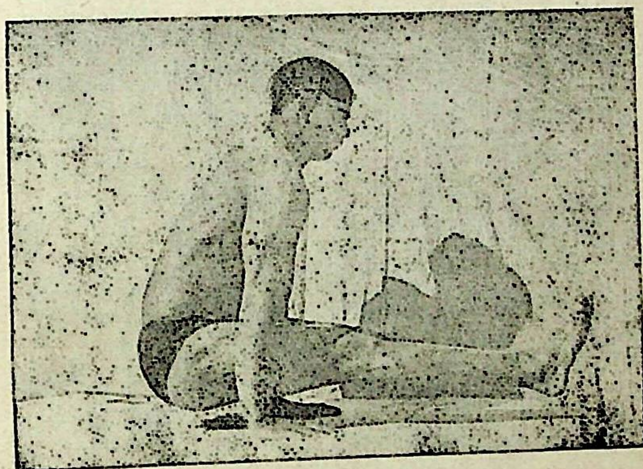


जानुशिरासन

विधि—बायां पैर सीधा करें। दायां पैर मूल में सिद्धासन की भांति लगायें। दोनों हाथों से बायें पैर का पंजा पकड़ें और पश्चिमोत्तानासन की भांति शिर को बायें घुटने से मिलायें। इसी प्रकार दाहिनी ओर से भी अभ्यास करें।

लाभ—इस आसन को करते समय पेट को अन्दर तथा गुदा और मूल संस्थान को मन द्वारा ऊपर खींचने से वीर्य की ऊर्ध्वगति होती है। इसका जितना लम्बा अभ्यास किया जायेगा उतना अधिक लाभप्रद रहेगा।

२५—तुलासन



तुलासन

विधि—दोनों पैरों को भूमि पर फैलाकर बैठ जायें, दोनों हाथों की हथेलियों को जङ्घा के पास बाहर की तरफ भूमि पर रख कर दोनों हथेलियों पर ही शरीर को ऊपर उठावें, पैर दोनों मिले हुये और सीधे रहें, घुटनों पर से मुड़ने न पावें। जितना ऊपर उठा जाएगा उतना अच्छा है।

लाभ—कटि संस्थान दृढ़ होता है, पेट और पैरों के रोग शान्त होते हैं, हाथ मजबूत बनते हैं।

२६—आकर्ण धनुरासन

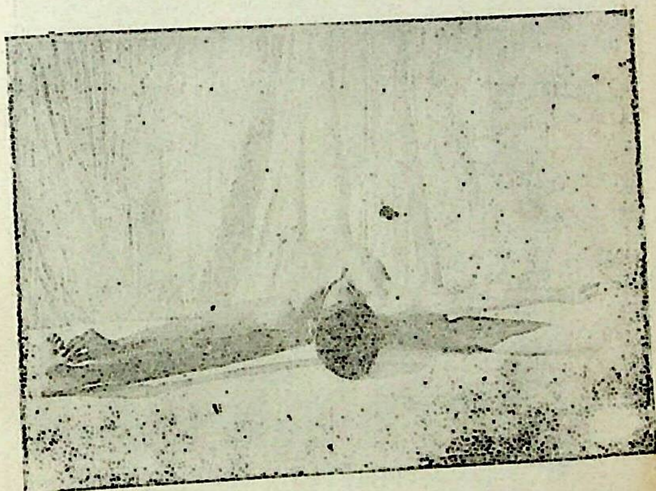


आकर्ण धनुरासन

विधि—दोनों पैर फैलाकर भूमि पर बैठ जायें फिर दायां पैर सीधा रहे। बायां पैर दायें पैर की जङ्घा पर रखें। दायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा पकड़ कर कान तक खींचें। बायें हाथ से दाहिने पैर का अंगूठा पकड़ लें। जैसे धनुष पर तीर को रख कान तक संन्धान करते हैं वैसे ही पैरों को तानें। इसी प्रकार बायें पैर को सीधा कर अभ्यास करें।

लाभ—इस आसन से पैर, घुटने, भुजा तथा जङ्घायें पुष्ट होती हैं।

२७—भूनमनासन



भूनमनासन

विधि—भूमि पर बैठकर दोनों पैरों को यथाशक्ति दायें बायें खूब फैलायें, हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़ कर सिर को भूमि पर टेक दें।

लाभ—इससे कटि, जांघ, पेट तथा पीठ सबल एवं निरोग बनते हैं।

२८—एकपादशिरासन

विधि—पहले भूमि पर नितम्ब टेक कर बैठ जावें फिर एक पैर को टकने के पास से पकड़ कर शनैः शनैः ऊपर उठाकर उसे गुद्दी पर रखें।

२९—द्विपादशिरासन

विधि—एक पैर के अभ्यास के पश्चात् उसी प्रकार दूसरे पैर

को भी ग्रीवा पर ले जावें और हाथों को पैर के अन्दर से लाकर उनकी हथेलियां भूमि पर ठिकावें और शरीर को हाथों पर उठादें।



एकापादशिरासन

लाभ—इन दोनों ही से हाथ, पैर, ग्रीवा आदि की नस-नाड़ियां शुद्ध, स्वस्थ एवं बलवान् होती हैं। जठराग्नि तीव्र होती है।

३०—उत्थित एकपाद शिरासन

विधि—पहले दोनों पैरों पर सीधे खड़े हो जायें पश्चात् कमर को कुछ झुकाकर दोनों हाथों से पैर को पिंडली पर से पकड़ लें और उसे ऊपर उठाकर गर्दन पर रख दें। दोनों हाथों को भी पीछे परस्पर बांध लें। केवल एक पैर पर खड़े रहें। निचला पैर सीधा रहे। इसी प्रकार दूसरे पैर से करें।

लाभ—इससे पैर तथा जङ्घा आदि स्थानों की नस-नाड़ियां शुद्ध होती हैं। शरीर वश में रहता है।



उत्थित एकपाद शिरासन

३१—अर्ध मत्स्येन्द्रासन

विधि—पैरों को सीधे कर भूमि पर बैठ जाइये। बायें पैर को दाहिने नितम्ब के नीचे लगायें। दायें पैर को मोड़कर बायें पैर के घुटने के समीप ऊपर से ले जाकर भूमि में टिका दें। बायें हाथ को दाहिने पैर के घुटने के बाहर से लाकर दायें पैर का अंगूठा पकड़िये। दाहिने हाथ को पीठ के पीछे से लाकर बायीं जङ्घा को पकड़ें। ग्रीवा को दाहिनी ओर जितना घुमा सकें घुमायें। इसी प्रकार दायीं ओर पैर बदल कर अभ्यास करना चाहिये।



अर्धमत्स्येन्द्रासन

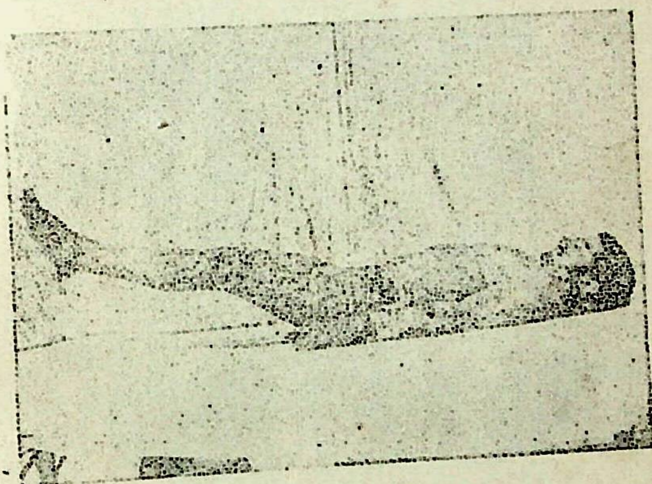
लाभ—इस आसन के करने से जठराग्नि तीव्र होती है, मेरुदण्ड स्वस्थ रहता है, आन्तों को बल प्राप्त होता है, अतिसार, संग्रहणी, रक्तविकार, दमा, मेद-वृद्धि, अजीर्णता आदि रोग दूर हो जाते हैं। स्वास्थ्य रक्षा के लिये यह आसन अत्युत्तम है।

३२—उत्तानपादासन

विधि—भूमि पर चित लेट कर अत्यन्त मन्द गति से दोनों पावों को साथ-साथ ऊपर उठावें और श्वास को अन्दर भरते जावें। जब पांव भूमि से १ फुट ऊपर आजावें तब वहीं रोक दें, जब श्वास लेने की इच्छा हो तब धीरे-धीरे पांवों को नीचे लेजाकर पूर्वस्थिति में आजावें। इसी प्रकार बार-बार करें।

इस आसन को करते समय जितनी मन्दगति से पांवों को ऊपर उठाया जायेगा और नीचे लाया जायेगा उतना ही अधिक लाभ

होगा। शनैः-शनैः पांवों को उठाना और नीचे ले जाना जीतन कठिन है उतना ही अधिक लाभप्रद है।



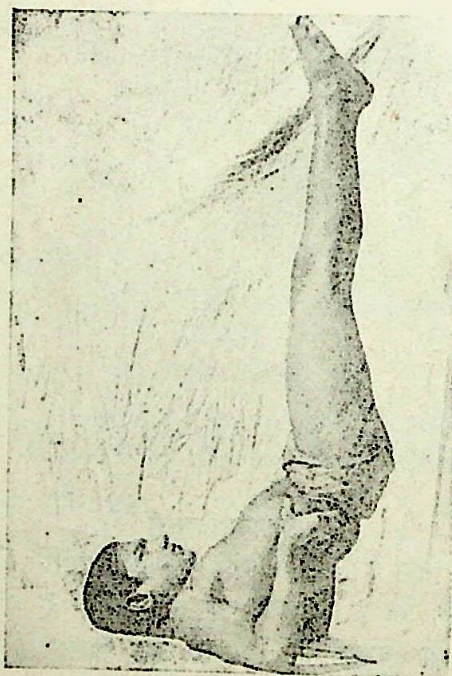
उत्तानपादासन

लाभ– इस आसन के करने से क्षुधा प्रदीप्त होती है, शौच शुद्धि होती है, पेट के स्नायुवों का बल बढ़ता है और पेट नहीं बढ़ता। नाभि (धरन) का डिगना इस आसन के करने से ठीक हो जाता है। नलों के रोग दूर होते हैं।

३३—सर्वाङ्गासन

विधि—समभूमि पर चित लेट जावें और हाथों को सीधा पसार दें पश्चात् पांवों को शनैः शनैः ऊपर उठावें और हाथों को कटि पर लगाकर सहारा लेकर इतना सीधा करदें कि केवल कन्धों के ऊपर का भाग ही भूमि पर टिके। सम्पूर्ण शरीर खिचा हुवा

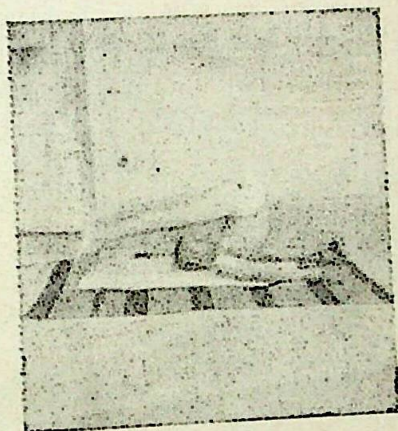
हो, और श्वास अन्दर रहे, ठोड़ी कण्टसूल में लगावें तथा दृष्टि पांव के अंगूठों पर जमावें।



सर्वाङ्गासन

लाभ—इस आसन के करने से यकृत्, प्लीहा, पक्वाशय, आंतें शुद्ध होकर जठराग्नि तीव्र होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। कण्ठ के रोगों में लाभदायक है। मिर्गी, गठिया तथा वीर्यरक्षा के लिये उत्तम है। इसे करते समय मूलबन्ध लगाने से अत्यन्त लाभ होता है।

३४—हलासन

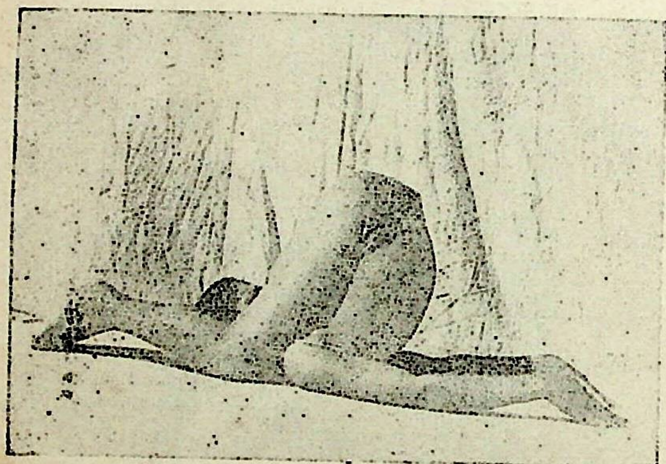


हलासन

विधि—सर्वाङ्गासन के बाद पैरों को घुटनों पर से न मोड़ते हुये शनैः शनैः सिर के पीछे टेक दें, पैर सीधे रहें और हाथों को भूमि पर सीधा पसार दें, तथा श्वास, को बाहर निकाल कर गुदा और उपस्थेन्द्रिय का इच्छा शक्ति से ऊर्ध्व आकर्षण करें। इस आसन को मूलबन्ध लगाये-लगाये काफी देर तक करने से वीर्य यथार्थ में ऊपर को चढ़ने लगता है और उसमें स्थिरता आ जाती है।

लाभ—इसके करने से आंतों को शक्ति मिलती है। कद बढ़ता है, कटिशूल में लाभप्रद है।

३५—कर्णपीडासन



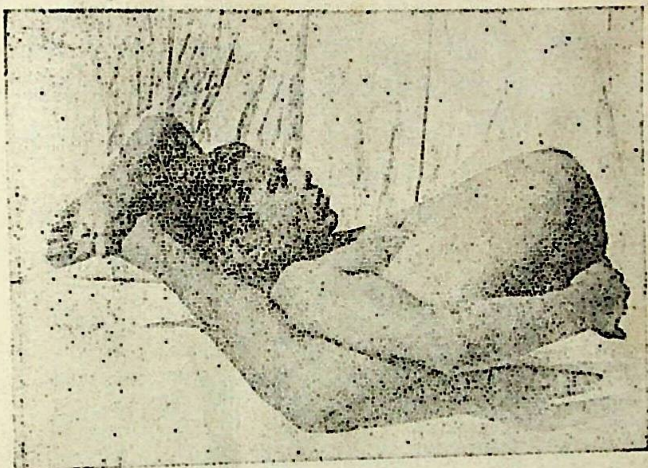
कर्णपीडासन

विधि—हलासन करके फिर दोनों घुटनों को मोड़कर, कानों के पास ले जाकर भूमि पर टिका दें।

लाभ—हलासन के समान हैं। विशेष कानों को लाभप्रद है।

३६—सुप्तगर्भासन

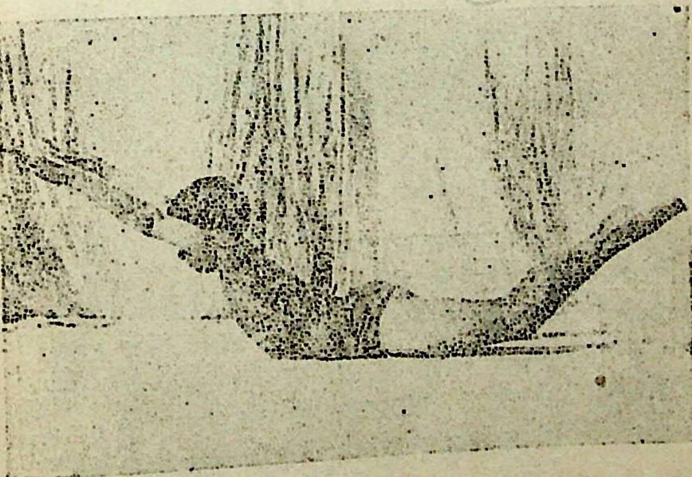
विधि—हलासन की अवस्था में ही दोनों पैरों को शिर के पीछे से ले जाकर मिला लें। दोनों हाथों को पैरों के अन्दर से निकाल कर पीठ के पीछे मिलायें। जैसे बच्चा गर्भ में रहता है उसी प्रकार की आकृति इस आसन में बन जाती है।



सुप्तगर्भासन

लाभ—आमाशय तथा प्लीहा के रोग दूर होकर जंघायें बलवान् बनती हैं।

३७—नाभ्यासन

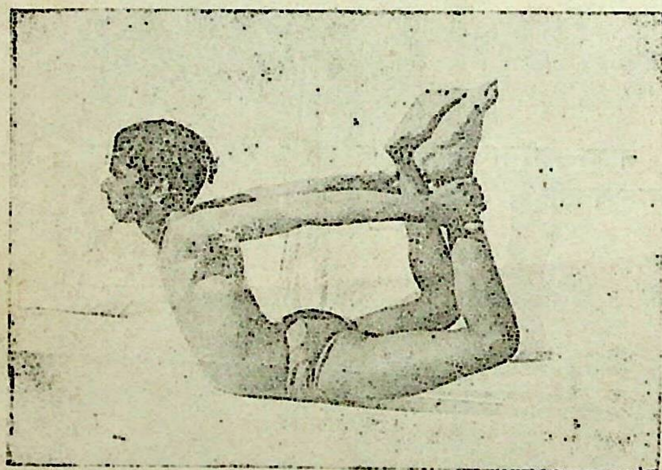


नाभ्यासन

विधि—पेट के बल उल्टा लेट कर हाथों को ऊपर लेजाकर, दोनों हाथों तथा पैरों में एक फुट की दूरी रखकर फैला दें, फिर श्वास को अन्दर भर कर दोनों हाथों, पैरों तथा शिर व छाती को पेट के बल ऊपर उठा दें, हाथों और पैरों को अधिक से अधिक ऊपर उठाने का यत्न करना चाहिये।

लाभ—नाभि शक्ति का विकास, मन्दाग्नि, अजीर्णता, वायु तथा पेट के सभी रोगों और वीर्य सम्बन्धी दोषों को दूर करता है।

६८—धनुरासन



पहला अभ्यास

विधि—भूमि पर पेट के बल लेट कर दोनों हाथों से पैरों के टकने पकड़ लें पश्चात् शिर, धड़ एवं पैरों को हाथों द्वारा धनुष की तरह तान दें। केवल नाभि के आस-पास का भाग ही भूमि पर लगा रहे। शरीर को जितना तान सकें उतना अच्छा है।

लाभ—पेट का मोटापा दूर होता है, नाभि ठीक रहती है।

छाती, हृदय, पेट तथा फेफड़ों के समस्त अवयव निरोग एवं बलवान् बनते हैं।

३९—धनुरासन

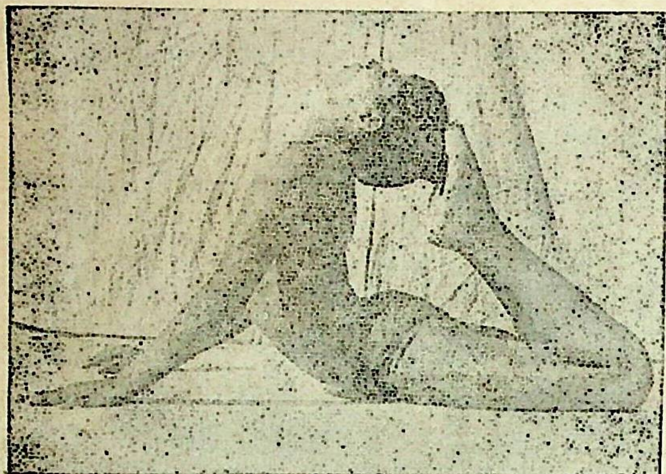


दूसरा अभ्यास

यह पहले अभ्यास की भांति ही होगा, इसमें पैरों के टकने न पकड़ कर अंगूठे पकड़ने हैं। लाभ पूर्ववत्।

४०—सर्पासन

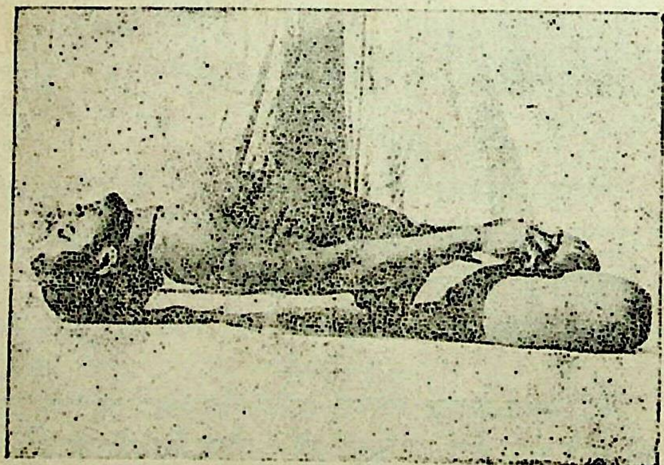
विधि—पेट के बल लेटकर कमर तक के भाग को ऊपर उठायें और दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर सिर के साथ मिला दें।



सर्पासन

लाभ—छाती, हृदय तथा फेफड़े बलबान् होते हैं, पेट के रोग दूर होकर घुटने मजबूत होते हैं।

४१—मत्स्यासन



मत्स्यासन

विधि—पाद्मासन लगाकर लेट जायें, सिर को पीछे की ओर मोड़कर भूमि पर टिका दें, हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़कर कोहनियां भूमि पर टिका दें।

लाभ—गर्दन, पेट तथा छाती के विकार दूर होते हैं। भूख बढ़ती है। पेट की गर्मी कम होती है।

इस प्रकार यह आसनों का व्यायाम संक्षेप से पूरा हुआ। जो आसन जिसके अनुकूल हों उन उनका चयन करके नित्यप्रति किया करें। कभी-कभी समय निकाल कर सभी को किया करें। इनके करने में शीघ्रता कभी नहीं करें। इन्हें जितना शनैः शनैः और धैर्य के करेंगे उतना ही अच्छा रहेगा।

कुश्ती

जगत् गुरु आर्यावर्त्त के लिये मल्ल-विद्या कोई नया विषय नहीं है, कुश्ती तो हमारे भारतवर्ष की प्राचीन विद्या है। यह शक्ति बढ़ाने की बड़ी उत्तम कला है। इसी कुश्ती के कारण हमारे देश में हनुमान्, कृष्ण, जरासन्ध, अर्जुन और भीम सदृश दुर्धर्ष योद्धा हुए जो विशालकाय हाथियों को भी पकड़-पकड़ कर आकाश में गेंद की तरह उछाल दिया करते थे, आज भी जिनकी अतुल्य शक्ति की यशोगाथा सारे भूमण्डल में फैली हुई है। रामायण और महाभारत के समय में यह विद्या बहुत बढ़ी-चढी थी। हमारे पूर्वज इसके महत्त्व को समझते थे, तभी तो इस कला के एक से एक बढ़कर खिलाड़ी हुये हैं। किन्तु बड़े खेद की बात है कि आज हम इस अपनी ही परमोपयोगी विद्या को भूलते जा रहे हैं, दिनों-दिन इससे दूर होते जा रहे हैं।

पहले हमारी पञ्चायतों का यह नियम होता था कि प्रत्येक

ग्राम में व्यायामशालाएं और अखाड़े चलाये जायें, जिससे देश की शोभा वढ़ावें।

कलियुगी भीम राममूर्त्ति के लोक प्रसिद्ध वल का कारण भी कुश्ती आदि का व्यायाम ही था। प्रो० राममूर्त्ति ने इसी कुश्ती के वल पर संसार के नामी पहलवानों को ललकारा था। वे मोटी मोटी जंजीरों को कच्चे सूत के धागे की तरह तोड़ दिया करते थे। सैंकड़ों मन के पत्थर को छाती पर रखकर तुड़वाना तथा हाथी को अपनी छाती पर चढ़ाना, दो-दो मोटरों को एक साथ रोक कर उन्होंने अपनी पहलवानी की धाक देश-विदेश में सर्वत्र बैठा दी थी। किन्तु आज हम इस शक्तिप्रदायिनी कुश्ती को बेकार समझ रहे हैं। इसी कारण देश का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश में फिर से भीम और राममूर्त्ति जैसे वलिष्ठ हों तो हमें ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में ब्रह्मचर्य के उपदेश के साथ-साथ व्यायामशालाएं और अखाड़े स्थापित करने होंगे। स्वस्थ और बलिष्ठ व्यक्तियों को पारितोषिक देकर उन्हें सम्मानित करना होगा। तभी देश की प्राचीन गौरव-गरिमा पुनः प्राप्त हो सकती है। तभी पतित भारत का भाग्योदय हो सकता है। और यह ऋषियों का देश अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त हो सकता है।

पहलवानी के लिये प्रसिद्ध है कि—"जो लंगोट का सच्चा वही पहलवान् पक्का।" अर्थात् जो ब्रह्मचर्य का पालन करेगा वही पहलवान बन सकेगा।

कुश्ती से शरीर के सब अंग-प्रत्यंगों पर जोर पड़ता है, जिससे शरीर शीघ्र हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। कुश्ती करते समय परस्पर की रगड़ से नस-नाड़ियों में खून का प्रवाह जोरों से होने लगता है।